



# अनुपानदर्पणस्थविषयानुक्रमणिका ।



| विषय                    | पृष्ठ. | विषय                      | पृष्ठ |
|-------------------------|--------|---------------------------|-------|
| मङ्गलाचरण ग्रन्थारम्भ.. | १      | कितनेक रोगोंमें दुग्धानु  |       |
| वैद्यविवेक .. ...       | २      | पान ...                   | १९    |
| आयुर्वेदविवेक .         | ५      | योगराज गुग्गुलु अनुपान    | २२    |
| शल्यतन्त्र ...          | ११     | नारायणचूर्णानुपान ...     | ११    |
| शालाक्यनाम              | ६      | निर्गुडीअनुपान... ..      | २३    |
| कायचिकित्सा .. ...      | ११     | सकलरोगोंमें हरीतकीके      |       |
| भूतविद्या ..            | ११     | अनुपान ... ..             | २४    |
| कौमारभृत्य .. .         | ११     | गुडूची अनुपान ...         | २५    |
| अगदतन्त्र .             | ७      | नेत्ररोगपर गुडूचीस्वरसका  |       |
| रसायनतन्त्र             | ११     | औषध . ...                 | २६    |
| चाजीकरणतन्त्र .         | ११     | नेत्ररोगमें पुनर्नवानुपान | २७    |
| आयुर्वेदनिरुक्ति ...    | ११     | त्रिफलानुपान ... ..       | ११    |
| अथ मानविवेक             | ८      | मृत्युजयादि रसधातूपधा-    |       |
| औषधमात्राका मान         | ९      | तुओंका अनुपानविवेक        | २९    |
| नारीविवेक ...           | १०     | वसतकुसुमाकर रसको          |       |
| अनुपानविवेक             | १२     | अनुपान ...                | ११    |
| अनुपानविशेषवर्णन ...    | १४     | लोकनाथ रसका अनुपान        | ३०    |
| मदिरादि अनुपानवर्णन     | १५     | स्वर्णमालिनीवसत रसके      |       |
| वर्णिका पृथक् पृथक्     |        | अनुपान ...                | ३२    |
| अनुपान वर्णन            | ११     | वृद्धन्मालिनी वसतरसके     |       |
| अनुपान पानिका प्रशसा    | १५     | अनुपान                    | ११    |
| अनुपानविधिका योग्या-    |        | पाशुपत रसके अनुपान ..     | ३३    |
| योग्यता ..              | १८     | पर्पटीरसके अनुपान ...     | ११    |

## प्रस्तावना ।



शरीरके आरोग्य होनेको औषध सेवन करना चाहिये. सो बात आबाल वृद्धोंको मालूम है. परंतु कौनसी दवाई किस अनुपानके साथ लेनी यह बात साधारण वैद्योंकोभी समझती होंगी. ऐसा नहीं कह सकते कि, अमुक रोग हुआ होय तो अमुक औषध लेना, परंतु वह औषध यथायोग्य अनुपानके साथ नहीं लिया जाय तो उससे यथोक्त गुण आता नहीं. इसवास्ते हमने श्रीमदा-धोचवशभूषण श्रीत्रिलदेवमूनु श्रीज्ञारसरामजी पंडितवर्यजोसे सुश्रुतआदिक त्रिविध आयुर्वेदीय ग्रंथोंके प्रमाणोंसहित यह “अनुपानदर्पण” नामक नवीन प्रथरचना कराय स्वकीय “श्रीवेंकटेश्वर” छापाखानामें छापकर प्रसिद्ध किया है ।

समस्त वैद्य और सर्व लोगोंको प्रार्थना कीजातीहै कि, महाशयो ! इस ग्रंथमें कहेहुयेके अनुसार उस उस रोगमें औषध सेवनमें अनुपानकी यथोक्त योजना करके औषधका सेवन करके रोगको नष्ट करो, और शरीरका आरोग्य पाकर इस शरीरके द्वारा धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष इन पुरुषार्थोंका साधन करो, और उक्त पंडितजीके परिश्रमोंको सफल करो. किमधिकम् ।

आपका कृपाकाक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेंकटेश्वर” छापाखाना—मुंबई.

# अनुपानदर्पणस्थविषयानुक्रमणिका



| विषय.                   | पृष्ठ. | विषय.                     | पृष्ठ. |
|-------------------------|--------|---------------------------|--------|
| मङ्गलाचरण ग्रन्थारम्भ . | १      | कितनेकरोगोंमें दुग्धानु   |        |
| वैद्यविवेक .. ...       | २      | पान ...                   | १९     |
| आयुर्वेदविवेक ..        | ५      | योगराज गुग्गुलु अनुपान    | २२     |
| शल्यतन्त्र ...          | ११     | नारायणचूर्णानुपान ...     | ११     |
| शालाक्यनाम              | ६      | निर्गुडीअनुपान... ..      | २३     |
| कायचिकित्सा... ..       | ११     | सकलरोगोंमें हरीतकीके      |        |
| भूतविद्या ..            | ११     | अनुपान ... ..             | २४     |
| कौमारभृत्य .. ..        | ११     | गुडूची अनुपान ...         | २५     |
| अगदतन्त्र .             | ७      | नेत्ररोगपर गुडूचीस्वरसका  |        |
| रसायनतन्त्र . ..        | ११     | औषध ..                    | २६     |
| वाजीकरणतन्त्र .         | ११     | नेत्ररोगमें पुनर्नवानुपान | २७     |
| आयुर्वेदनिरक्ति ...     | ११     | त्रिफलानुपान ... ..       | ११     |
| अध मानविवेक             | ८      | मृत्युजयादि रसधातुपधा-    |        |
| औषधमात्राया मान         | ९      | तुओंका अनुपानविवेक        | २९     |
| नारीविवेक ....          | १०     | वसनकुसुमाकर रसको          |        |
| अनुपानविवेक             | १२     | अनुपान ...                | ११     |
| अनुपानविशेषवर्णन ...    | १४     | लोकनाथ रसका अनुपान        | ३०     |
| मदिरादि अनुपानवर्णन     | १५     | स्वर्णमालिनीवसन रसके      |        |
| वर्णवर्णका पृथक् पृथक्  |        | अनुपान ....               | ३२     |
| अनुपान वर्णन            | ११     | वृद्धमालिनी वसनरसके       |        |
| अनुपान पानेकी प्रशसा    | १७     | अनुपान                    | ११     |
| अनुपानविधिकी योग्या-    |        | पाशुपत रसके अनुपान ..     | ३३     |
| योग्यता .               | १८     | पर्यटिग्नके अनुपान ...    | ११     |

| विषय.                    | पृष्ठ. | विषय.                     | पृष्ठ. |
|--------------------------|--------|---------------------------|--------|
| जयाजयती इन्होंका अनु-    |        | नीलैकातभस्मके अनुपान      | ५६     |
| पान ...                  | ३४     | प्रवालभस्मके अनुपान       | "      |
| सुवर्णभस्मके अनुपान .... | ३६     | रोगविशेषमें अनुपानविशेष   | ५७     |
| रौप्यभस्मानुपान °        | ३७     | विषके पृथक् पृथक् अनुपान  | ५८     |
| ताम्रभस्मानुपान ....     | ३९     | योगराज गुग्गुलुविधि ..    | ६४     |
| वङ्गभस्मानुपान..         | "      | नारायणचूर्णविधि ..        | ६६     |
| जसदभस्मके अनुपान ...     | ४१     | मृत्युजयरसनिर्माणविधि ... | ६७     |
| नागभस्मानुपान ....       | ४२     | वसतकुमुमाकररसनि-          |        |
| लोहभस्मानुपान            | ४३     | र्माणविधि ....            | ६९     |
| स्वर्णमाक्षिक अनुपान     | ४४     | लोकनाथरसनिर्माणविधि       | "      |
| रौप्यमाक्षिक अनुपान ...  | "      | स्वर्णमालिनीवसतरस-        |        |
| तुल्य भस्मके अनुपान ...  | ४५     | निर्माणविधि ....          | ७३     |
| शिलाजतुके अनुपान ...     | "      | वृहन्मालिनीवसतरस-         |        |
| पारदभस्मके अनुपान ...    | ४६     | निर्माणविधि ...           | "      |
| रससिंदूरके अनुपान ...    | ४८     | पाशुपतरसनिर्माणविधि ...   | ७४     |
| रसकर्पूरके अनुपान        | "      | पर्पटीरसनिर्माणविधि ....  | ७५     |
| गंधकके अनुपान ....       | ४९     | जयावटीनिर्माणविधि ....    | ७७     |
| हिंगुलके अनुपान ...      | ५०     | जयतावटीनिर्माणविधि ....   | "      |
| अधकके अनुपान ...         | "      | धानूपधातुरसोपरसरनोप-      |        |
| हरितालके अनुपान          | ५२     | रत्नविषोषविषोंका          |        |
| मनशिलके अनुपान ...       | ५३     | शोधनमारणविवेक ...         | ७८     |
| सींघीरके अनुपान ....     | ५४     | सप्तधातुनामानि .          | "      |
| गर्परके अनुपान .         | "      | सप्तउपधातुनामानि ...      | "      |
| हीरकभस्मके अनुपान ....   | ५५     | रस वर्णन ..               | ७९     |
| वेङ्गातभस्मके अनुपान     | "      | उपरसनामानि ..             | "      |

| विषय.                    | पृष्ठ. | विषय.                         | पृष्ठ. |
|--------------------------|--------|-------------------------------|--------|
| नवरत्ननामानि ....        | ७९     | हसमदूरविधि ..                 | ९५     |
| उपरत्ननामानि ..          | ११     | रसमारण                        | ९६     |
| विषभेद .                 | ११     | रससिंदूरविधि .                | ९७     |
| उपत्रिपकथन ...           | ११     | रसकर्पूरविधि ...              | ११     |
| सप्तधातुशोधन ...         | ८१     | हिंगुलमारण ....               | ९८     |
| उपधातुशोधन ...           | ११     | अश्रकमारण ...                 | ९९     |
| रससंस्कार ...            | ८३     | अन्यप्रकारसे अश्रकमारण        | ११     |
| रसशोधन ....              | ८४     | हारितालमारण ...               | ११     |
| उपरसशोधन ...             | ८५     | वज्रमारण .                    | १००    |
| रत्नशोधन ..              | ८८     | प्रवालमारण ...                | १०१    |
| विषशोधन .                | ११     | पक्क सुवर्णभस्मका गुण         | ११     |
| उपविषशोधन                | ११     | अपक्क स्वर्णभस्मका दोष        | ११     |
| जैपालशोधन ...            | ११     | पक्क रूपेके भस्मका गुण        | १०२    |
| स्वर्णका मारणविधि ...    | ८९     | अपक्करूपेके भस्मका दोष        | ११     |
| रौप्यमारणविधि ...        | ९०     | पक्क ताम्रभस्मके गुण          | ११     |
| ताम्रमारणविधि .          | ११     | अपक्क ताम्रभस्मके दोष. ..     | ११     |
| वगमारणविधि ...           | ९२     | पक्कवगभस्मके गुण .            | १०३    |
| जसदमारणविधि .            | ९३     | अपक्क वगभस्मके दोष .          | ११     |
| नागमारणविधि .            | ११     | पक्क जसदभस्मके गुण .          | ११     |
| लोहमारणीविधि ...         | ११     | अपक्क जसदभस्मके दोष...        | ११     |
| स्वर्णमाक्षिकमारणविधि    | ९४     | पक्कनागभस्मके गुण ...         | ११     |
| रौप्यमाक्षिकमारणविधि ... | ११     | अपक्कनागभस्मके दोष ..         | १०४    |
| तुल्यमारणविधि ....       | ११     | पक्कलोहभस्मके गुण ....        | ११     |
| सिंदूरमारणनिषेध ...      | ११     | अपक्कलोहभस्मके दोष ...        | १०५    |
| शिलाजतुमारणविधि ...      | ११     | पक्कसुवर्णमाक्षिक भस्मके गुण  | ११     |
| मर्दूरविधि ....          | ९५     | अपक्कसुवर्णमाक्षिक भस्मके दोष | ११     |

| विषय.                    | पृष्ठ. | विषय.                       | पृष्ठ. |
|--------------------------|--------|-----------------------------|--------|
| जयाजयती इन्होंका अनु-    |        | नीलवैक्रातभस्मके अनुपान     | १६     |
| पान .... ..              | ३४     | प्रवालभस्मके अनुपान         | "      |
| सुवर्णभस्मके अनुपान .... | ३६     | रोगविशेषमें अनुपानविशेष     | १७     |
| रौप्यभस्मानुपान °        | ३७     | विषके पृथक् पृथक् अनुपान    | १८     |
| ताम्रभस्मानुपान ....     | ३९     | योगराज गुग्गुलुविधि ....    | ६४     |
| वज्रभस्मानुपान .. .      | "      | नारायणचूर्णविधि ...         | ६६     |
| जसदभस्मके अनुपान ...     | ४१     | मृत्युञ्जयरसनिर्माणविधि ... | ६७     |
| नागभस्मानुपान ....       | ४२     | वसतकुमुमाकररसनि-            |        |
| लोहभस्मानुपान            | ४३     | र्माणविधि ....              | ६९     |
| स्वर्णमाक्षिक अनुपान     | ४४     | लोकनाथरसनिर्माणविधि         | "      |
| रौप्यमाक्षिक अनुपान ...  | "      | स्वर्णमालिनीवसतरस-          |        |
| तुल्य भस्मके अनुपान ...  | ४५     | निर्माणविधि ....            | ७३     |
| शिलाजतुके अनुपान ...     | "      | वृहन्मालिनीवसतरस-           |        |
| पारदभस्मके अनुपान ...    | ४६     | निर्माणविधि ...             | "      |
| रसासिद्धके अनुपान ...    | ४८     | पाशुपतरसनिर्माणविधि ...     | ७४     |
| रसकर्पूरके अनुपान        | "      | पर्पटीरसनिर्माणविधि ....    | ७५     |
| गन्धकके अनुपान ....      | ४९     | जयावटीनिर्माणविधि ...       | ७७     |
| हिङ्गुलके अनुपान ...     | ५०     | जयनविटीनिर्माणविधि ....     | "      |
| अश्वकके अनुपान ...       | "      | धातूपवातुरसोपरसरनोप-        |        |
| हरितालके अनुपान .        | ५२     | रत्नविषोपविषोका             |        |
| मनशिलके अनुपान ...       | ५३     | शोधनमारणविवेक ...           | ७८     |
| नीवीरके अनुपान ....      | ५४     | सतधातुनामानि . .            | "      |
| सर्पिके अनुपान ...       | "      | सतउपधातुनामानि ...          | "      |
| हीरकभस्मके अनुपान ....   | ५५     | रस वर्णन ..                 | ७९     |
| वैक्रान्तभस्मके अनुपान   | "      | उपरमनामानि ...              | "      |

| विषय.                    | पृष्ठ.  | विषय.                         | पृष्ठ  |
|--------------------------|---------|-------------------------------|--------|
| नवरत्ननामानि .           | ... ७९  | हसमडूरविधि ..                 | ९५     |
| उपरत्ननामानि ....        | ... ११  | रसमारण .                      | ९६     |
| विषभेद .                 | . ११    | रससिद्धरविधि ..               | ९७     |
| उपविषकथन ...             | ... ११  | रसकर्धूरविधि ...              | . ११   |
| सप्तधातुशोधन .           | . ८१    | हिंगुलमारण ....               | . ९८   |
| उपधातुशोधन ...           | ११      | अभ्रकमारण ....                | .. ९९  |
| रससंस्कार ...            | . ८३    | अन्यप्रकारसे अभ्रकमारण        | ११     |
| रसशोधन ..                | .... ८४ | हारतालमारण ...                | ... ११ |
| उपरसशोधन ...             | ... ८५  | वज्रमारण .                    | .. १०० |
| रत्नशोधन ....            | ८८      | प्रवालमारण .                  | १०१    |
| विषशोधन ..               | ११      | पक्क सुवर्णभस्मका गुण         | ११     |
| उपविषशोधन .              | . ११    | अपक्क स्वर्णभस्मका दोष        | ११     |
| जैपालशोधन .              | ... ११  | पक्क रूपेके भस्मका गुण        | १०२    |
| स्वर्णका मारणविधि ...    | ८९      | अपक्करूपेके भस्मका दोष        | ११     |
| रौप्यमारणविधि ...        | ९०      | पक्क ताम्रभस्मके गुण .        | ११     |
| ताम्रमारणविधि .          | . ११    | अपक्क ताम्रभस्मके दोष ..      | ११     |
| वगमारणविधि ...           | ... ९२  | पक्कवगभस्मके गुण .            | १०३    |
| जसदमारणविधि .            | . ९३    | अपक्क वगभस्मके दोष .          | ११     |
| नागमारणविधि ..           | ११      | पक्क जसदभस्मके गुण ...        | ११     |
| लोहमारणीवीध ...          | ११      | अपक्क जसदभस्मके दोष...        | ११     |
| स्वर्णमाक्षिकमारणविधि .  | ९४      | पक्कनागभस्मके गुण ...         | ११     |
| रौप्यमाक्षिकमारणविधि ... | ११      | अपक्कनागभस्मके दोष ....       | १०४    |
| तुत्थमारणविधि ....       | ११      | पक्कलोहभस्मके गुण ....        | ११     |
| सिद्धरमारणनिषेध ...      | ११      | अपक्कलोहभस्मके दोष ...        | १०५    |
| शिलाजतुमारणविधि ...      | ११      | पक्कसुवर्णमाक्षिक भस्मके गुण  | ११     |
| मडूरविधि ....            | ... ९५  | अपक्कस्वर्णमाक्षिक भस्मके दोष | ११     |



| विषय                       | पृष्ठ. | विषय.                      | पृष्ठ. |
|----------------------------|--------|----------------------------|--------|
| पक्क रौप्यमाक्षिक भस्म-    |        | शुद्धसीवीरके गुण ....      | ११०    |
| के गुण                     | १०५    | अशुद्ध सीवीरके दोष ..      | ११     |
| अपक्करौप्यमाक्षिक भस्मके   |        | शुद्ध खर्परके गुण ...      | १११    |
| दोष ...                    | १०६    | अशुद्धखर्परके दोष          | ११     |
| पक्क तथा अपक्क तुल्यभस्मके |        | पक्क वज्रभस्मके गुण ...    | ११     |
| गुण तथा दोष                | ११     | अशुद्ध अपक्क वज्रभस्मके    |        |
| शुद्ध शिलाजितके गुण ...    | ११     | दोष ...                    | ११२    |
| अशुद्ध शिलाजितके दोष       | ११     | पक्क वैक्रातभस्मके गुण ..  | ११     |
| पक्क पारदभस्मके गुण ...    | १०७    | अशुद्ध अपक्क वैक्रातभस्मके |        |
| अशुद्ध अपक्क पारदभ-        |        | दोष ..                     | ११     |
| स्मके दोष ....             | ११     | शुद्ध प्रवालभस्मके गुण     | ११     |
| शुद्ध रससिंदूरके गुण ...   | ११     | अशुद्ध प्रवालके दोष ....   | ११     |
| अशुद्ध रससिंदूरके दोष      | १०८    | विषके गुणागुण... ....      | ११३    |
| शुद्ध रसकर्पूरके गुण       | ११     | अथ धात्वादोषशाति-          |        |
| अशुद्ध रसकर्पूरके दोष ..   | ११     | विवेक ..                   | ११४    |
| शुद्ध गंधकके गुण           | ११     | अपक्क स्वर्ण दोषशाति ...   | ११     |
| अशुद्ध गंधकके दोष          | ११     | अपक्क रौप्यदोषशाति ....    | ११     |
| शुद्धहिंगुलके गुण          | ११     | अपक्क वङ्गदोषशाति          | ११     |
| अशुद्धहिंगुलके दोष ....    | ११     | अपक्क ताम्रदोषशाति ....    | ११     |
| पक्क अभ्रक भस्मके गुण      | १०९    | अपक्क जसदोषशाति ...        | ११     |
| अपक्क अभ्रक भस्मके दोष     | ११     | अपक्क नागदोषशाति ..        | ११     |
| पक्क हरितालभस्मके गुण      | ११०    | अपक्क लोहदोषशाति ...       | ११     |
| अपक्क हरितालभस्मके दोष     | ११     | अपक्कलोहजन्यकीटशाति.       | ११     |
| शुद्ध मनाशिल भस्मके        |        | अपक्क स्वर्णमाक्षिकदोष-    |        |
| गुण ...                    | ११     | शाति ..                    | ११५    |
| अशुद्ध मनाशिलभस्मके        |        |                            |        |
| दोष ...                    | ११०    |                            |        |

| विषय.                            | पृष्ठ | विषय.                         | पृष्ठ. |
|----------------------------------|-------|-------------------------------|--------|
| अपक्व रौप्यमाक्षिकदोष-           |       | अशुद्धमनशिलादोष-              |        |
| शाति ... .. ११६                  |       | शाति .. .... ११७              |        |
| अपक्वतुथदोषशाति ... .. "         |       | अशुद्धसौवीरदोषशाति ... .. "   |        |
| अशुद्ध शिलाजितदोषशाति .. .. "    |       | अशुद्ध खर्परदोषशाति . ११८     |        |
| अशुद्ध तथा अपक्वपारेकी दोषशाति,, |       | अशुद्ध अपक्व वज्रभस्म-        |        |
| अशुद्ध रससिंदूरके दोष-           |       | दोषशाति ११९                   |        |
| शाति . . . . . "                 |       | अशुद्ध अपक्व वैक्रात भस्म-    |        |
| अशुद्ध रस कर्पूरदोष-             |       | दोषशाति ... .. "              |        |
| शाति ११७                         |       | अशुद्ध प्रवाल दोषशाति .. .. " |        |
| अशुद्ध गंधकदोषशाति . . . . . "   |       | अशुद्ध विषदोषशाति... .. "     |        |
| अशुद्ध हिंगुलदोषशाति . . . . . " |       | जैपाल दोषशाति .. .. "         |        |
| अपक्व अधकदोषशाति . . . . . "     |       | ग्रथसमाप्ति .... ... १२०      |        |
| अपक्व हरितालभस्म-                |       | ग्रथकर्ताका जन्मसंवत्स-       |        |
| शाति ... .. "                    |       | रादिवर्णन ... .. "            |        |

इत्यनुक्रमणिका ॥

# जाहिरात.

| नाम.   | की.रु.आ.ट.म.रु.आ. |      |
|--|-------------------|------|
| १ अपरोक्षानुभूतिसंस्कृतटीका भाषाटीका सहित ...                                      | ०-१०              | ०-१  |
| २ आत्मबोध भाषाटीका ...   | ०-४               | ०-॥  |
| ३ तत्वबोध भाषाटीका ....  | ०-२॥              | ०-॥  |
| ४ वेदातग्रथपचकम् ( वाक्यप्रदीप वाक्यसुधारसं-<br>हस्तामलक.निर्वाणपचक मनीषापचके ) स० | ०-८               | ०-१  |
| ५ वेदस्तुति भाषाटीका सह ...  | ०-८               | ०-१  |
| ६ रामगीता मूल ...  | ०-२               | ०-॥  |
| ७ श्रीमद्भगवद्गीतापचरत्नअक्षरमोटागुटकारेशमी ....                                   | १-४               | ०-४  |
| ८ " पचरत्न अक्षरबडा खुलापत्रा छोटिसची, . ...                                       | १-८               | ०-३  |
| ९ " पचरत्न अक्षरबडा लविसची खुला ....   | १-०               | ०-३  |
| १० गीता श्रीधरीटीकासहित . ...  | १-४               | ०-३  |
| ११ गीता बडे अक्षरकी १६ पेजी गुटका ..   | १-०               | ०-२  |
| १२ गीता बडे अक्षरकी खुली १२ पेजी ...   | ०-१२              | ०-२  |
| १३ गीता गुटका विष्णुसहस्रनाम सहित . ..   | ०-८               | ०-१  |
| १४ गीता पचरत्न और एकादशरत्न ...  | ०-१२              | ०-२  |
| १५ " पचरत्न द्वादशरत्न ....  | ०-१०              | ०-१॥ |
| १६ गीतापचरत्न नवरत्न पाकिट बुक ....  | ०-७               | ०-१  |
| १७ गीता गुटका पाकिट बुक ....   | ०-६               | ०-॥  |
| १८ पाण्डवगीता भाषाटीका सह . .  | ०-३               | ०-॥  |
| १९ पाण्डवगीतादि ४ रत्न अक्षर बडा ...   | ०-३               | ०-॥  |

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“ श्रीवेङ्कटेश्वर ” छापाखाना ( मुंबई )

॥ श्रीः ॥

## अथानुपानदर्पणनामायंग्रन्थः ।



प्रणम्य श्रीगणेश्वरं हरिं हरं दिवाकरं शिवा  
गुरुश्च लक्ष्मणाग्रजाह्वयं भिषग्वरम् ॥ गुणाकरं  
सुधाकरं गतस्पृहं दयाधरं करोम्यहं सतां मुदेऽ  
नुपानदर्पणं परम् ॥ १ ॥

प्रारब्धत्रयस्य निर्विघ्नेन परिसमाप्त्यर्थं सपञ्चामरगुरुनमस्कारात्मक मङ्गलमात-  
नोति पञ्चचामरवृत्तेन ग्रन्थकर्ता कवि.—अह ( जारसराम — ) ज्ञा ‘अवबोधने’--  
क्या० प०—जानातीति ज्ञा बुद्धिः—रस आस्वादने—चुराद्यदन्तश्चास्माद्धातो—  
“ अकर्तरि च कारकं सज्ञायाम् ३-३-१९ । ” सूत्रेणानेन घञ्—रस्यते इति  
रस स्वादो हर्षो वा ‘ रसो गधरसे स्वादे ’ इति विश्व.—‘ रसस्त्वादे जले वीर्ये’—  
इति हेम—‘ रसो जल रसो हर्ष ’—इत्यनकार्थञ्चानि—रमु क्रीडायामस्माद्धातो—  
“ ज्वलतिक्रमन्तेभ्यो ण ३-१-१४० ” सूत्रेणानेन ण—रमते इति राम—  
ज्ञा बुद्धिस्तस्या रसोऽवबोधात्मकस्त्वादो हर्षो वा तस्मिन् रमते इति ( जारसराम )  
अनुपानदर्पण ( अनुपानग्रथाना मध्ये दर्पणमादर्शयाम् ) परम् ( उत्तमं प्रथं )  
कारामि—किं कृत्वा—श्रीगणेश्वर ( श्रिया शोभया युक्ताना गणाना प्रमथानामी-  
श्वरस्त गणाधिपम् ) हरि—( विष्णु ) हरिर्विष्णुर्हरिर्मरुदित्यनेकार्थञ्चानि । हर  
( महादेव हरस्मरहरो भर्ग इत्यमर ) दिवाकर—( सूर्य्य सूर्य्यसूर्य्यमादित्यद्वाद-  
शात्मदिवाकरा इत्यमर ) शिवा ( दुर्गा— ) च ( पुनः ) गुरु ( गृणाति हिन-  
मुपदिशतीति गुरुग्नमायुर्वेदोपदेशारमिथ्य ) प्रणम्य ( नमस्कृत्य ) कीदृश  
गुरु—लक्ष्मणाग्रजाह्वय ( लक्ष्मणाग्रजां रघुनाथ आह्वयो यस्य स त रघुनाथ-  
भर्माण रघामिनमिथ्य ) ।

पुन.कीदृश—भिषग्वर ( वैद्यश्रेष्ठ भिषग्वैद्योचिकित्सके—इत्यमरः ) पुन.कीदृश—गुणोक्त ( गुणानामाकरस्त सद्गुणसम्पन्नमित्यर्थः ) पुन.कीदृश—सुधाकर (सुधा—अमृतन करे यस्य स तपीयूपपाणिंसिद्धहस्तमित्यर्थः। पीयूपममृत-सुधा—इत्यमरः ) पुन.कीदृश—गतस्पृह ( गता स्पृहा दीनेभ्यो धनप्राप्तिवाछा यस्यस.त सतुष्टमनसमित्यर्थः ) पुन.कीदृश—दयाधर ( धरतीतिधर—दयायाधरं दयाधरस्त कृपालु दुःखिनेष्वनुकम्पाशीलम् ( कृपादयानुकम्पास्यादित्यमरः ) कस्मै प्रयोजनाय—सता ( विदुपासाधूनावा—सत्येसाधोविद्यमानेप्रशस्तेऽभ्यर्हिते चसदित्यमरः—सत्साधौधीरशस्तयोरिति मेदिनी ) अनेन खलाना हर्षाभाव रूचितः । मुदे ( हर्षाय—मुत्प्राप्ति-प्रमदोहर्ष प्रमोदामोदसम्मदादित्यमरः ) भवति चात्र—नन्दन्ति भोजनैर्विप्रा मयूरा घनगर्जनैः। साधव.परकल्याणै खला परविपत्तिभिः । परोत्कर्पाऽसहनत्वमेवासाधुधर्मत्वमिति भावः ॥ १ ॥

भाषानुवाद—इस ग्रंथकी निर्विघ्नसे समाप्तिकोलिये ग्रंथकर्ताकवि पञ्चम-रुद्रसे-गणेशादि पञ्चदेवतोंसहित अपने गुरुको नमस्कार रूप मङ्गल करताहै बुद्धिके विचाररूपी हर्षमे जो रमण करे उसे ज्ञारसराम कहतेहैं सो मे—गणेश-विष्णु—महेश—सूर्य—देवी—और वैद्योमे श्रेष्ठ—सद्गुणसम्पन्न—अमृतके समान जिनका हाथ—लोभरहित—दयासहित जो पंडित श्री १०९ रघुनाथशर्मा स्वामीजी दोसोदनिवासी जिन्होंने मुझे आयुर्वेद ( वैद्यविद्या ) पढाई उन गुरुजीको नमन करके सज्जनके आनन्दार्थ अति उत्तम अनुपानदर्पणनामक ग्रंथको बनाताहूँ ॥ १ ॥

अथातो वैद्यविवेकं व्याख्यास्यामः ॥ २ ॥

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ॥

यः कर्म कुरुते वैद्यस्स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥ ३ ॥

१ सत्यशौचदयाक्षातिस्त्यागस्तोष आर्जवम् ॥ शमोदमरतपस्त्राभ्यातितिक्षोपरति-  
श्रुतम् ॥ गानविरचिरैश्वर्यशौर्यैतेजोबलस्मृतिः ॥ स्वातंत्र्यकीशल कातिधैर्यमादक  
मेनचेत्यादयोगुणाः ।

सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने अ० ४ । एकं शास्त्रमधी-  
यानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ॥ तस्माद्बहुश्रुतः  
शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः ॥ ४ ॥ सुश्रु०  
सू० अ० ४ । अधिगतमप्यध्ययनमप्रभाषितम-  
र्थतः । खरस्य चन्दनभार इव केवलं परिश्रम-  
करं भवति ॥ यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य  
वेत्ता न तु चन्दनस्य ॥ एवं हि शास्त्राणि बहू-  
न्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति ॥ ५ ॥ सुश्रु०  
अ० ४ । भवन्ति चात्र-यस्तु केवलशास्त्रज्ञः  
कर्मस्वपरिनिष्ठितः ॥ स सुहृत्प्राप्तुरं प्राप्य  
प्राप्य भीरुरिवाहवम् ॥ ६ ॥ यस्तु कर्मसु  
निष्णातो धाष्टर्याच्छास्त्रवहिष्कृतः ॥ स सत्सु  
पूजा नामोति वधश्चार्हति राजतः ॥ ७ ॥ सुश्रु०  
सू० अ० ३ ॥

भाषानुवाद- अत्र वैद्यकं विवक ( विचार ) का वर्णन करेंगे ॥ २ ॥ जो गुरु-  
मुखद्वारा शास्त्रग्रहण करके बारबार विचार, क्रियामें निपुण होकर चिकित्सा  
( न्यावेशमनांपाय ) करताह वही वैद्य है और जो गुरुसे संपूर्ण ग्रन्थको  
प्रतिपठे ही वैद्य बनजावे वै वैद्य नहीं किन्तु वै चोर है ऐसा अन्तरिजने सुश्रुतसे  
कहा है ॥ २ ॥ गुरुक मुखद्वाराभी एकही शास्त्र पटनेवाला शास्त्रके सारको  
नहीं जानसक्ता हम जिये वैद्यको उचितहै कि सब शास्त्रोंके विषयको पट सुन  
और विचारकर जबरज्त जानलेवे ॥ ४ ॥ जो पुरप सब शास्त्रकोभी पटले और  
उसे अर्थ अनर्थका ज्ञान न हो तो वह कबल शास्त्रोंका भार उठानेवाला है उसे

शास्त्री सदैव कहनायोग्य नहीं, जैसे गधेपर चदन लादनेसे वह केवल चदन भार (बोझ) को जानताहै परन्तु उसकी सुगन्धको नहीं जानता, इसलिये वैद्यक शास्त्र पढ़नेवालेको व्याकरण (पाणिनीयसूत्रो) का बोध अवश्य चाहिये जिससे अर्थानर्थको जानलेवे ॥ ५ ॥ भाषानुवाद—जो केवल वैद्यशास्त्रको जानताहो औ कर्म (अनुपानादिक्रिया) में निपुण न हो वह वैद्य रोगीको प्राप्तहोकर मोहित (घबड़ाय) जाताहै जैसे कायर रण (सग्राम) पाकर घबरा जाताहै तेसे ॥ ६ ॥ और जो क्रियाको जानताहो परन्तु शास्त्रके बोधसे रहित हो वह वैद्य सज्जनोंमें आदर नहीं पाता और राजाको उचितहै कि उस अनपढ़ वैद्यको अपनेराज्यसे बाहर करदे—वा मरवाडाले नहीं तो वह बहुतसी प्रजाको नष्टकरदेगा ॥ ७ ॥

उभावेतावनिपुणावसमर्थौ स्वकर्मणि ॥ अर्द्ध  
वेदधरावेतावेकपक्षाविव द्विजौ ॥ ८ ॥ औष-  
ध्योऽमृतकल्पास्तु शस्त्राशनिविषोपमाः ॥  
भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतौ विवर्जयेत् ॥ ९ ॥  
यस्तूभयज्ञोमतिमान्ससमर्थोऽर्थसाधने ॥ आहवे  
कर्मनिर्वोदुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ॥ १० ॥  
मुश्रु० सू० अ० ३-४ ॥

भाषानुवाद—उक्त दोनों प्रकारके वैद्य अशिक्षित होनेसे चिकित्सा करने असमर्थ होतेहैं, जैसे एकपक्षवाले पक्षी उड़नेको असमर्थ होतेहैं तेसे अथवा जं इन दोनोंमें अर्थात् क्रिया और शास्त्रमें अशिक्षितहैं वे पक्षीरहित पक्षीके समादु खित और असमर्थ होतेहैं ॥ ८ ॥ जो औषधि अमृतके समानहैं वे उनअशिक्षित (गिनपड़ेहुवे मूर्ख) वैद्योंके हाथसे-शास्त्र वज्र और विषके समान होजानी इसलिये सबको उचित है कि मूर्ख वैद्योंसे औषध कदापि न लेवें ॥ ९ ॥ जं बुद्धिमान शास्त्र और क्रियामें निपुणहै वही प्रयोजन सिद्धकरताहै अर्थात् उसीरोग निवृत्त होताहै जैसे युद्धमें दोपहियेके रथसे कार्यसिद्ध होताहै तेसे

इसलिये अष्टाग आयुर्वेदको पढ़ेहुए और क्रियामे निपुण ऐसे वैद्यसे ही सबने औषध सेवन करना चाहिये, ये सब सुश्रुतके सूत्रस्थानके ३ रे तथा ४ थे अध्यायमें लिखा है ॥ १० ॥

इति श्रीमत्पण्डितज्ञारसरामविरचिते सुभाषानुवादविभूषितेऽनुपान  
दर्पणे वैद्यविवेककथने प्रथमः प्रमादः ॥ १ ॥

अथायुर्वेदविवेकं व्याख्यास्यामः १ ।

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानु-  
त्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च  
कृतवान् ॥ स्वयंभूस्ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्व-  
आवलोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान् ॥ २ ॥  
शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौ-  
मारभृत्यमगदतन्त्रं रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्र-  
सिति ॥ ३ ॥ अथास्य प्रत्यङ्गलक्षणसमासः ॥ ४ ॥  
तत्र १ शल्यं नाम—विविधकाष्ठपाषाणपांशुलो-  
हलोष्टास्थिवाल—नखपूयास्त्रावान्तर्गर्भशल्योद्ध-  
रणार्थयन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चया-  
र्थञ्च ॥ ५ ॥ सुश्रु० सू० स्था० अ० १ ॥

भाषानुवाद—अब आयुर्वेदविवेकको वर्णन—करेंगे ॥ यह आयुर्वेद जो  
अर्धवेदका उपाङ्ग है उसको सृष्टिसे पूर्वही परमात्माने एक लक्ष श्लोक और  
एकसहस्र अध्यायमें निर्मित किया ॥ १ ॥ इतना बनानेके पश्चात् मनुष्योंकी  
अन्पायु और अल्पबुद्धि देखकर उस आयुर्वेदके पुन आठभाग किये ॥ २ ॥  
उन आठभागोंके ये नाम हैं—१ शल्य २ शालाक्य ३ कायचिकित्सा ४ भूत-  
विद्या ५ कौमारभृत्य ६ अगदतन्त्र ७ रसायनतन्त्र और ८ वाजीकरणतन्त्र ॥ ३ ॥  
अब इस आयुर्वेदके प्रत्येकभागका पृथक्पृथक् लक्षण कहेंगे ॥ ४ ॥



शास्त्री सदैव कहनायोग्य नहीं, जैसे गधेपर चदन लादनेमें वह केवल चदनमें भार (बोझ) को जानताहै परन्तु उसकी सुगन्धको नहीं जानता, इसलिये वैद्यक शास्त्र पढ़नेवालेको व्याकरण (पाणिनीयसूत्रों) का बोध अवश्य चाहिये जिससे अर्थानर्थको जानलेवे ॥ ५ ॥ भाषानुवाद—जो केवल वैद्यशास्त्रको जानताहो और कर्म (अनुपानादिक्रिया) में निपुण न हो वह वैद्य रोगीको प्राप्तहोकर मोहित (घबड़ाय) जाताहै जैसे कायर रण (संग्राम) पाकर घबरा जाताहै तैसे ॥ ६ ॥ और जो क्रियाको जानताहो परन्तु शास्त्रके बोधसे रहित हो वह वैद्य सज्जनोंमें आदर नहीं पाता और राजाको उचितहै कि उस अनपढ़ वैद्यको अपनेराज्यसे बाहर करदे—या मरवाडाले नहीं तो वह बहुतसी प्रजाको नष्टकरदेगा ॥ ७ ॥

उभावेतावनिपुणावसमर्थौ स्वकर्मणि ॥ अर्द्ध  
वेदधरावेतावेकपक्षाविव द्विजौ ॥ ८ ॥ औप-  
ध्योऽमृतकल्पास्तु शास्त्राशनिविपोपमाः ॥  
भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतौ विवर्जयेत् ॥ ९ ॥  
यस्तूभयज्ञोमतिमान्ससमर्थोऽर्थसाधने ॥ आहवे  
कर्मनिर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ॥ १० ॥  
सुश्रु० सू० अ० ३-४ ॥

भाषानुवाद—उक्त दोनों प्रकारके वैद्य अशिक्षित होनेसे चिकित्सा करनेमें असमर्थ होतेहैं, जैसे एकपखवाले पक्षी उड़नेको असमर्थ होतेहैं तैसे अथवा जो इन दोनोंमें अर्थात् क्रिया और शास्त्रमें अशिक्षित हैं वे पक्षोरहित पक्षीके समान दुःखित और असमर्थ होतेहैं ॥ ८ ॥ जो औपधि अमृतके समानहैं वे उनअशिक्षित (विनपढेहुवे मूर्ख) वैद्योंके हाथसे-शास्त्र वज्र और विपके समान होजातीहैं इसलिये सबको उचित है कि मूर्ख वैद्योंसे औपध कदापि न लें ॥ ९ ॥ जो बुद्धिमान शास्त्र और क्रियामें निपुणहै वही प्रयोजन सिद्धकरताहै अर्थात् उसीसे रोग निवृत्त होताहै जैसे युद्धमें दोषहियेके रथसे कार्यासिद्ध होताहै तैसे

सलिये अष्टाग आयुर्वेदको पढ़ेहुए और क्रियामे निपुण ऐसे वैद्यसे ही सबने औषध सेवन करना चाहिये, ये सब सुश्रुतके सूत्रस्थानके ३ रे तथा ४ थे अध्यायमें लिखा है ॥ १० ॥

इति श्रीमत्पण्डितज्ञारसरामधिरचिते सुभाषानुवादविभूषितेऽनुपान  
दर्पणे वैद्यविवेककथने प्रथमः प्रमोदः ॥ १ ॥

अथायुर्वेदविवेकं व्याख्यास्यामः १ ।

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानु-  
त्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च  
कृतवान् ॥ स्वयंभूस्ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्व-  
आवलोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान् ॥ २ ॥  
शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौ-  
मारभृत्यमगदतन्त्रं रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्र-  
मिति ॥ ३ ॥ अथास्य प्रत्यङ्गलक्षणसमासः ॥ ४ ॥  
तत्र १ शल्यं नाम—विविधकाष्ठपाषाणपांशुलो-  
हलोष्टास्थिवाल—नखपूयास्त्रावान्तर्गर्भशल्योद्ध-  
रणार्थयन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चया-  
र्थञ्च ॥ ५ ॥ सुश्रु० सू० स्था० अ० १ ॥

भाषानुवाद—अब आयुर्वेदविवेकको वर्णन—करेंगे ॥ यह आयुर्वेद जो  
अथर्ववेदका उपाङ्ग है उसको सृष्टिसे पूर्वही परमात्माने एक लक्ष श्लोक और  
एकमहत्त्व अध्यायमे निर्मित किया ॥ १ ॥ इतना बनानेके पश्चात् मनुष्योंकी  
अन्पाय और अल्पबुद्धि देखकर उस आयुर्वेदके पुन आठभाग किये ॥ २ ॥  
उन आठभागोंके ये नाम हैं—१ शल्य २ शालाक्य ३ कायचिकित्सा ४ भूत-  
विद्या ५ कौमारभृत्य ६ अगदतन्त्र ७ रसायनतन्त्र और ८ वाजीकरणतन्त्र ॥ ३ ॥  
अब इस आयुर्वेदके प्रत्येकभागका पृथक्पृथक् लक्षण कहेंगे ॥ ४ ॥

शल्यका लक्षण—अनेक प्रकारके तृण ( कठोरघास वा गोखरू—नागफनी आदिकेकाटे ) काष्ठ ( लकड़ीकी फासआदि ) लोहेकी कील—हड्डी—बाल—नख—आदिके लगनेसे जो घाव होजाताहै अथवा उक्त वस्तुओंका कुछभाग ( अंग ) घावमें रहजानेसे जो घाव बिगडजाताहै उसको दूरकरनेको जो यत्न वा यत्रद्वारा उन वस्तुओंका निकालना या गर्भमेंसे मरेहुये बालकको शल्य वा यत्रद्वारा निकालना अथवा घावके उत्तमप्रकारसे जाननेके हेतु जो यत्न कियाजाताहै उसको शल्यचिकित्सा कहतेहैं ॥ ५ ॥

२ शालाक्यनाम-ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदनघ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ ६ ॥ ३ कायचिकित्सानाम-सर्वाङ्गसंसृतानां व्याधीनां ज्वरातिसाररक्तपित्तशोषोन्मादापस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम् ॥ ७ ॥ सुश्रु० सू० स्था० अ० १ । ४ भूतविद्यानाम-देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥ ८ ॥ सुश्रु० सू० स्था० अ० १ । ५ कौमारभृत्यं नाम-कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ ९ ॥

भाषानुवाद—२ शालाक्यल० जो कण्ठसे ऊपरके अङ्ग जैसे—मुख—नाभ नेत्र ओष्ठ कानआदिमें उत्पन्न हुये रोगोंके दूरकरनेको यत्न कियाजाताहै २ शालाक्य कहतेहैं ॥ ६ ॥ ३ कायचिकित्सा ल० जो सपूर्ण अंग ( शरीर—देह ) में हुये ज्वर—अतिसार—रक्तविकार—पित्तरोग—शोष ( खुशकी ) उन्माद ( खपती पगला ) अपस्मार ( मृगी ) कुष्ठ प्रमेह ( परमा ) आदि रोगोंके दूरकरने यत्नकिया जाताहै उसे कायचिकित्सा कहतेहैं ॥ ७ ॥ ४ भूतविद्याल० जो देवता

अमुर-गधर्व-यक्ष-राक्षस-पितर-पिशाच-सर्प और नवग्रह आदिमें चित्त लगनेसे अनेक भ्रमजन्य पीडा होतीहै उनकी शान्ति करनेको यत्न किया जाताहै उसको भूतविद्या कहते हैं ॥ ८ ॥ ५ कौमारभृत्यल० बालकोंका पालन पोषण-धायके दूधमें जो दोष होतेहैं उनके तथा उस बिगड़ेहुये दूधके पीनेमें जो बालकोंको रोग होतहैं उनके दूरकरनेके यत्नको कौमारभृत्य तत्र कहतेहैं ॥ ९ ॥

६ अगदतंत्रनाम-सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषिकादि-  
दष्टविषव्यंजनार्थं विविधविषसंयोगविषोपहतो-  
पशमनार्थम् ॥१०॥ ७ रसायनतंत्रनाम-वयः-  
स्थापनमायुर्मेधावलकरंरोगापहरणससर्थम् ॥११॥  
सुश्रु० सू० स्था० अ० १ । ८ वाजीकरणतंत्रं नाम-  
अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यायनप्रसादोप-  
चयजनननिमित्तं ग्रहर्पजननार्थञ्च, एवमयमायु-  
र्वेदोऽष्टाङ्ग उपदिश्यते ॥१२॥ इहखलवायुर्वेदप्रयो-  
जनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य  
रक्षणञ्च आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्द-  
तीत्यायुर्वेदः ॥ १३ ॥ सुश्रु० सू० स्था० अ० १ ॥

भाषानुवाद-६ अगदतत्रल० साप-काँडे-चन्दर-मूषे-आदिविपेले जीवोके काटनेसे जो मनुष्योंके शरीरमें विष फैल जाताहै उसको दूरकरनेको जो उपाय कियाजाताहै उसे अगदतत्र कहतेहैं ॥१०॥ ७ रसायनतत्रल० जिससे मनुष्योंकी आयु पूर्ण हो और बल बुद्धिकी वृद्धि तथा समस्त रोग निवृत्त हो उस उपायको रसायनतत्र कहतेहैं ॥११॥ ८ वाजीकरणतत्रल० जिससे थोड़े वीर्यवाले पुरुषकी बीर्य वृद्धि होती वीर्यवाले की वीर्यशुद्धि और क्षीणवीर्यवालेकी पुन वीर्योत्पत्ति हो

और उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंको जो आनन्द देनेवाला उपाय हो उसे वाजीकरणतंत्र कहतेहैं, इसप्रकारसे यह आयुर्वेद अष्टाङ्ग कहलाताहै ॥ १२ ॥ इस जगत्में आयुर्वेदके प्रकाश करनेका यही प्रयोजन है कि रोगयुक्त मनुष्योंको रोगसे छुड़ाना और रोगरहित मनुष्योंकी रोगसे रक्षा करना (बचाना) आयुर्वेदका अर्थ यह है कि, आयु अर्थात् शरीर इन्द्रिय और जीव इन तीनोंका स्वस्थतापूर्वक संयोग हो जिसमें उसे आयुर्वेद कहतेहैं अथवा २ आयुका जिससे विचार हो उसे आयुर्वेद कहतेहैं अथवा ३ आयु जिसके द्वारा जानीजाय उसे आयुर्वेद कहतेहैं अथवा ४ जिससे आयुःप्राप्तहो उसे आयुर्वेद कहतेहैं ये सब सुश्रुतके मूलस्थानके पहिले अध्यायमे लिखाहै ॥ १३ ॥

इति श्रीमत्पण्डितज्ञारसरामविरचिते सुभाषानुवादविभूषितेऽनुपानदर्पणे  
आयुर्वेदविवेककथने द्वितीय प्रमेदः ॥ २ ॥

अथ मानविवेक व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

न मानेन विनायुक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ॥  
अतःप्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ २ ॥ यतो  
मन्दाग्रयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ॥ अतस्तु  
मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसम्मता ॥ ३ ॥ यत्रो  
द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बधैः ॥ यवद्वयेन  
गुंजा स्यान्निगुंजो वल्ल उच्यते ॥ ४ ॥ माषो गुञ्जा  
भिरष्टाभिस्सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥ स्याच्चतु  
र्माषकैश्शशाणस्स निष्कं टंक एव च ॥ ५ ॥ गद्याणो  
माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ चतुःकर्षैः  
पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुःपलैश्च  
कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ६ ॥ शार्ङ्गधर  
संहितायां खं० १ अ० १ ॥

भाषानुवाद—अब इसके आगे मानविवेक वर्णन करेगे ॥ १ ॥ मान ( तोला ) विनाद्रव्य ( औषध ) आदिकी योजना ( युक्ति ) नहीं हो सकती इसलिये इस ग्रंथमें प्रथम मान परिभाषा लिखते हैं ॥ २ ॥ यद्यपि वैद्यकग्रंथोंमें १ मागध और २ कालिंग, ये दो प्रकारके मान दिये हैं परन्तु हम ग्रन्थविस्तारभयसे तथा कलियुगमें मदाग्नि छोटे और हीनबल मनुष्य होनेसे उनके योग्य कालिंग मानानुसारही मात्रा वैद्यको मन्तव्य होनेके कारण इसग्रंथमें कालिंगमानही वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥ १२ सपेद सरसोंका १ यत्र २ यत्रोंकी १ गुजा ३ गुजा ( चिरमी ) का १ बहट ॥ ४ ॥ ८ गुजा अथवा ७ गुजाका १ मासा ४ मासेका १ शाण जिसे निष्क तथा टकभी कहते हैं ॥ ५ ॥ ६ मासेका १ गद्याण १० मासेका १ कर्ष ४ कर्षका १ पल उस १ पलके १० शाण ( ४० मासे ) होते हैं और ४ पलका एक कुडव होता है । इसके आगे प्रस्थआदि मान मागध परिभाषानुसारही ग्रन्थांतरसे जानना चाहिये ॥ ६ ॥ यह मान शार्ङ्गधरसहिताके प्रथम खटके ( पहले ) अध्यायमें लिखा है ॥

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयोबलम् ॥  
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥  
नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाम्भोऽल्पं महानलम्  
अतिमात्रं च दोषाय यथा सस्ये बहूदकम् ॥ ८ ॥  
भावप्रकाशस्य पूर्वखंडस्य द्वितीयभागे चोक्तमिदम् ॥

भाषानुवाद—अब औषध मात्राका मान दर्शाते हैं—यद्यपि १ स्वरस २ पाथ ३ फाट ४ हिम ५ कल्क ६ गुटिका ७ चूर्ण ८ अवलेह ९ स्नेह ( तैल घृत ) १० आसव ११ और रस ( वातुमग्म ) आदिकी मात्रा ग्रंथोंमें पृथक् २ वर्णनकी भी हैं, तथापि समस्त ऋषि मुन्यादि वैद्यक ग्रंथकर्ताओंका अन्तिम यही सिद्धांत है कि ग्रन्थाक्तमात्रापरही वैद्य निश्चय न रखे

किन्तु काल ( समय ) रोगीकी अग्नि-अस्त्रा-वृद्ध-प्रकृति-दोष ( वात-पित्त-कफ ) और देश ( अन्तर्गता ) को देखकर अपनी बुद्धि अनुसार औषध मात्राकी योजना करे ॥७॥ क्योंकि जैसे बढाहुई अग्नि थोडे पानीसे शमन नहीं होती तैसेही बढाहुया रोगभी नियतमात्रासे दूर नहीं होता तो वहा रोगानुसार मात्राको बढाना चाहिये और जहा अल्परोग जानपडे वहा नियत मात्रा कोभी अल्प ( थोडी ) करदेनी चाहिये क्योंकि जैसे यव आदिसन्तके छोटे २ अकुरोंपर अधिक जल गिरनेसे वे अकुर गल जातेहैं तैसेही थोडे रोगपर अधिक मात्रा होनेसे वह हानिही पहुँचातीहैं इसलिये वैद्यको उचितहै कि मात्रा को विचारके देवे ॥८॥ ऐसा भावप्रकाशके पूर्व खडके दूसरे भागमें लिखाहै ॥

अथ नाडीविवेकं व्याख्यास्यामः ।

करस्यांगुष्ठमूलेयाधमनीजीवसाक्षिणी ॥ तच्चेष्ट  
यासुखंदुःखंज्ञेयंकायस्यपण्डितैः ॥ ९ ॥ नाडीध  
त्तेमरुत्कोपेजलौकासर्पयोगतिम् ॥ कलिंगकाक  
मण्डूकगतिपित्तस्यकोपतः ॥ १० ॥ हंसपारावत  
गतिधत्तेश्लेष्मप्रकोपतः॥लावतित्तिरवर्तीनां गम  
नेसन्निपाततः ॥ ११ ॥ कदाचिन्मंदगमनाकदा  
चिद्वेगवाहिनी ॥ द्विदोषकोपतोज्ञेयाहन्तिचस्था  
नविच्युता ॥ १२ ॥ स्थित्वास्थित्वाचलतिथासा  
स्मृताप्राणनाशिनी ॥ अतिक्षीणाचशीताचजी  
वितंहन्त्यसंशयम् ॥ १३ ॥

भाषानुवाद—अब नाडीविवेक वर्णन करतेहैं । रोगीको नाडी देखनेके समय वैद्य प्रसन्नबुद्धि स्थिरचित्तहोकर स्त्रीके वाम ( बाये ) और पुरुषके दाहन हाथके अगूठके मूलमे प्राणवायुकी साक्षीभूत जो नाडी है उसपर अपने सीधे हाथकी तर्जनी आदि ३ अगुली रखके उस नाडीकी चेष्टा ( गति ) से शरीरके सुखदुःखको जाने ॥ ९ ॥ वातप्रकोपमें सर्प और जोककी गति-समान पित्तप्रकोपसे कालिंग ( पक्षिविशेष—वा—बुलबुल ) काक और मेढुककी गति सदृश ॥ १० ॥ कफप्रकोपसे हंस तथा कबूतरकी गतिसमान सन्निपात ( त्रिदोष ) प्रकोपसे लवा तित्तिर तथा बटेरकी गतिसम ॥ ११ ॥ और द्विदोष ( वातपित्त—वातकफ—पित्तकफ ) प्रकोपसे कभी मद और कभी वेगसे नाडी चलतीहै और जो नाडी अपने स्थानको छोड़ देतीहै वह रोगीको नष्ट करदेतीहै ॥ १२ ॥ ठहर २ के चलनेवाली तथा अत्यंत क्षीण और जो ठही पड़ जाये सो नाडीभी रोगीके प्राणनाशिनीही जानो ॥ १३ ॥

ज्वरकोपेनधमनीसोष्णावेगवतीभवेत् ॥ काम  
क्रोधान्नवेद्वेगाक्षीणाचिन्ताभयाप्लुता ॥ १४ ॥  
मन्दगन्धेःक्षीणधातोश्चनाडीमन्दतराभवेत् ॥ असृ-  
क्पूर्णाभवेत्कोष्णागुर्वीसामागरीयसी ॥ १५ ॥  
लघ्वीवहतिवीसाग्नेस्तथावेगवतीभवेत् ॥ सुखित  
स्यरिथराज्ञेयातथावलवतीसता ॥ चपलाक्षुधि  
तरयापितृप्तस्यवहतिस्थिरा ॥ १६ ॥

भाष्यम्—नाडीपरीक्षार्थमेतेषांका शार्ङ्गधरस्य प्रथमखण्डस्य तृतीयाध्याये कथिता अताऽधिकाश्चापिसन्त्यनेका आयुर्वेदीयग्रन्थेषुधुंका. । परञ्च तत्रतेषां लेखनं तदग्रथस्य विस्तारार्थमेव कृतं यथा रग्विनिधयो निदानेन भवति नभवति तथा नाट्या तदेवाह निपग्वरोवाग्भट कवीश्वरोलोलिवराजश्च ॥



यीभवन्ति ॥ तथाऽम्लयोगे अधुरेण तृप्तास्तेषां  
 थ्रेष्टं प्रवदन्ति पथ्यम् ॥ २ ॥ शीतोष्णतोयास  
 वमद्ययूषफलाऽम्लधान्याम्लपयोरसानाम् ॥ यस्या  
 नुपानंतुहितं भवेद्यत्तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत् ॥  
 ॥ ३ ॥ व्याधिश्च कालश्च विभाव्यधीरैर्द्रव्याणि  
 योज्यानि च तानि तानि ॥ सर्वानुपानेषु वरं वदन्ति  
 मेध्यं यदंभः शुचिभाजनस्थम् ॥ ४ ॥ लोकस्य ज  
 न्मप्रभृतिप्रशस्तं तोयात्मकाः सर्वरसाश्च दृष्टाः ॥  
 संक्षेपे षोऽभिहितोऽनुपानेष्वतः परं विस्तरतोऽ  
 भिधास्ये ॥ ५ ॥

भाषानुवाद—अब इसके आगे अनुपानविवेक वर्णन करेंगे—अन्न औषध  
 और रस आदिके पीछे या सगही जो सेवन ( पान ) किया जावे उसे अनु-  
 पान कहते हैं ॥ १ ॥ कई मनुष्य खटाईसे विरक्त ( अप्रसन्न ) और मिठाईसे  
 अनुरक्त ( प्रसन्न ) रहते हैं और कई मिठाईसे विरक्त और खटाईसे अनुरक्त  
 रहते हैं उनको यथायोग्य ( उनके स्वभावानुसार ) पथ्य होना उचित है ॥ २ ॥ ठंडा  
 तथा उष्ण पानी आसथ ( अर्क ) मद्य / मदिरा , यूष / मूग आदि वस्तुओं,  
 का ओटाके निकाला हुआ साररूपी रस , फलकी खटाई—कार्जा—दूध—रस  
 ' जो कि गीली औषधसे निकाला गया हो , इनमेंसे जिस मनुष्यको जो हित  
 समझावे वही उसीको मात्रा / प्रमाणसे , अनुपान देना चाहिये ॥ ३ ॥ रोग तथा  
 समयके अनुकूल खानेकी वस्तुओंको विचारकर दे और शुद्ध व स्वच्छ पात्रमें  
 रसवाहुवा पानी सब अनुपानमें श्रेष्ठ होनेमें पीनेको देना चाहिये ॥ ४ ॥ ससारको  
 जन्मसे मरणपर्यन्त पानी हिनहीं है क्यों कि सब रसादि पानीसे ही होते हैं  
 इस लिये किसी अनुपानमें पानी वर्जित नहीं यह संक्षेपसे अनुपान कह अब  
 इसके आगे विस्तारसे कहते हैं ॥ ५ ॥

रोगमादौ परीक्षेत तदनंतरमौषधम् ॥ ततः कर्म  
 भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वसमाचरेत् ॥ १७ ॥ वा० भ०  
 आदौ निदानविधिना विदध्या द्रवाधिनिश्चयम् ॥  
 ततस्साध्यं समीक्षेत पश्चाद्भिषगुपाचरेत् ॥ १८ ॥  
 वै० जी० वि० १ ॥

भाषानुवाद—सामान्य ज्वरप्रकोपसे नाडी उष्णतापूर्वक अधिक वेग  
 चलती है, काम और क्रोधसे भी नाडी अत्यंत वेगसे चलती है, चिन्ता तथा भय  
 युक्त मनुष्योंकी नाडी क्षीण ( बलहीन ) चलती है ॥ १४ ॥ जिसकी अग्नि म-  
 हो तथा धातु क्षीण हो उस मनुष्यकी नाडी अत्यंत मंद चलती है, रक्तप्रकोप  
 युक्त नाडी कुछ २ उष्ण जड और भारी चलती है ॥ १५ ॥ जिस मनुष्यव-  
 जठराग्नि प्रदीप्त हो उसकी नाडी हलकी और वेगसे चलती है, रोगरहित मनुष्य  
 की नाडी स्थिर और बलयुक्त चलती है, भूखे मनुष्यकी नाडी चंचल और  
 भोजनादिसे तृप्त हुये मनुष्यकी निश्चल (स्थिरतायुक्त) नाडी चलती हैं ॥ १६ ॥  
 नाडीपरीक्षार्थ ये सब श्लोक शार्ङ्गधरके प्रथमखंडके तीसरे अध्यायमें वर्ण  
 किये हैं इनसे अधिक भी श्लोक कई वैद्यक ग्रंथोंमें लिखे हैं परन्तु उनका लिखन  
 केवल उसप्रथमके विस्तारार्थ ही है क्या कि रोगनिश्चय जैसा निदानसे होता  
 वैसा नाडीसे नहीं होता अत एव वैद्यश्रेष्ठ वाग्भटजी तथा कवीश्वर लोलिवराज  
 जीने भी कहा है कि प्रथम वैद्य निदानविधिसे रोगका निश्चय करे फिर साध्य  
 असाध्यका निश्चय करे तदनंतर ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करे अर्थात् साध्य हो तो  
 उसका यत्न और असाध्य रोग हो तो उसका त्याग कर देवे ॥ १७-१८ ॥

इति श्रीमत्पंडितज्ञारसरामविरचिते सुभाषानुवादविभूषितेऽनुपानदर्पणे  
 मानविवेकनाडीविवेककथने तृतीय प्रमोद ॥ ३ ॥

अथातोऽनुपानविवेकं व्याख्यास्यामः १

अम्लेन केचिद्विहितामनुष्या माधुर्ययोगे प्रण

उष्णोदकानुपानंतुस्नेहानामथशस्यते ॥ ऋते  
 भल्लातकस्नेहात्स्नेहात्तौवरकात्तथा ॥ ६ ॥ अ  
 नुपानंवदन्त्येकेतैले यूपाम्लकांजिके ॥ शीतोद  
 कंमाक्षिकस्यपिष्टान्नस्यचसर्वशः ॥ ७ ॥ दधि-  
 पायसमद्यार्तिविषजुष्टेतथैवच ॥ केचित्पिष्टमय-  
 स्याहुरनुपानंसुखोदकम् ॥ ८ ॥ पयोमांसरसोवा-  
 पिशालिमुद्गादिभोजिनाम् ॥ युद्धाध्वातपसंताप-  
 विषमद्यरुजासुच ॥ ९ ॥ माषादेरनुपानंतुधान्या-  
 म्लंदधिमस्तुवा ॥ मद्यमद्योचितानांतु सर्वमांसे  
 षुपूजितम् ॥ १० ॥ अमद्यपानामुदकं फलाम्लंवा  
 प्रशस्यते ॥ क्षीरं घर्माध्वभाष्यस्त्रीकृन्तानाम-  
 मृतोपमम् ॥ ११ ॥

भाषानुवाद—मिलावा और तुर ( -जिसके केशरके समान पत्ते और उड  
 दके समान होतेहैं ) तेलको छोडकर समस्त तैलादि चिकने पदार्थोंके भक्षण  
 में उष्णपानी अनुपानहै ॥६॥ कई आचार्य कहतेहैं कि तैल—यूप—खटाई—  
 काजी—सहत और पीसेहुए अन्न ( सत्तुआदि के भक्षणमें ठंढा पानी अनुपान  
 है ॥७॥ मद्यपानजन्य पीडा और विषभक्षणमें दही और दूध अनुपान है कई  
 आचार्य पीसे अन्नभक्षणका अनुपान सुखोदक ( थोडा उष्णपानी ) कहतेहैं ॥८॥  
 वान, मूग आदि भक्षण करनेवालोंको दूध या मासरस अनुपान है, युद्धमार्ग धूप  
 अग्निज्वाला इनसे एकेहुवोंको और विष तथा मद्य रोग युक्त पुरुषोंकोभी  
 दूध या मासरसही अनुपानहै ॥ ९ ॥ उडद आदि का अनुपान कौंजी अथवा  
 मट्टहै, मासभक्षणमें मद्यपीनेवालोंको मद्यही अनुपानहै ॥१०॥ मद्य न पीनेवा-  
 लोंको जल या फलकी खटाई अनुपानहै, घाम ( धूप ) मार्ग ( वाट—पथ—  
 रस्ता ) पढाने या पढने और स्त्रियोंसे एकेहुवे मनुष्यको दूध अमृतके समान  
 अनुपान है ॥ ११ ॥

सुराकृशानास्थूलानामनुपानंसधूदकम् ॥ निरा-  
मयानांचित्रंतुभुक्तमध्येप्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥ स्नि-  
ग्धोष्णंमारुतेपथ्यंकफेरुक्षोष्णामिष्यते ॥ अनु-  
पानंहितंचापिपित्तेमधुरशीतलम् ॥ १३ ॥ हितं  
शोणितपित्तिभ्यः क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ अर्कशे-  
लुशिरीषाणामासवास्तुविपार्तिषु ॥ १४ ॥ अतः  
परं तुवर्गाणामनुपानंपृथक्पृथक् ॥ प्रवक्ष्याम्यनु-  
पूर्वेणसर्वेषामेवमेतृणु ॥ १५ ॥

भाषानुवाद—मद्य ( मदिरा—ठारू—शराब—बराडी ) से दुबले और अत्यंत  
थोको जलयुक्त मधु ( सहत ) अनुपान है रोगरहित मनुष्योंको अनेक  
एकी दम्बु भोजनके मध्य २ ( बीच २ ) में खिलानाही अनुपान है ॥ १२ ॥  
रोगमें चिकना उष्ण कफरोगमें उष्ण रूखा और पित्तमें मीठा तथा ठंडा  
पान पथ्य है ॥ १३ ॥ रक्तपित्तमें दूध और ऊस ( साठें ) का रस  
पान पथ्य है, विषजनित रोगमें अर्क ( आकडा—अकौवा ) शीठा और  
रसका आसव अनुपान है ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् वर्ग वर्गका पृथक् २  
पान वर्णन करतेहैं ॥ १५ ॥

१ तत्रपूर्वसस्यजातीनांवदरास्त्वैदलानांधा-  
न्यास्त्वम् ॥ १६ ॥

२ अस्त्वानांफलानापद्मोत्पलकन्दासवः ॥ १७ ॥

३ कषयाणांदाडिमवेत्रासवः ॥ १८ ॥

४ मधुराणांत्रिकटुकयुक्तः कन्दासवः ॥ १९ ॥

५ तालफलादीनांधान्यास्त्वम् ॥ २० ॥

६ कटुकानादूर्वानिलवेत्रासवः ॥ २१ ॥

७ पिप्पल्यादीनांश्वदंष्ट्रावसुकासवः ॥ २२ ॥

८ कृष्माण्डादीनांदावीकिरीरासवः ॥ २३ ॥

९ चंचुप्रभृतीनांलोधासवः ॥ २४ ॥

उष्णोदकानुपानंतुस्नेहानामथशस्यते ॥ ऋते  
 भस्मातकस्नेहात्स्नेहात्तौवरकात्तथा ॥ ६ ॥ अ  
 नुपानंवदन्त्येकेतैले यूपाम्लकांजिके ॥ शीतोद  
 कंमाक्षिकस्यपिष्टान्नस्यचसर्व्वशः ॥ ७ ॥ दधि-  
 पायसमद्यातिविषजुष्टेतथैवच ॥ केचित्पिष्टमय-  
 स्याहुरनुपानंसुखोदकम् ॥ ८ ॥ पयोमांसरसोवा-  
 पिशालिमुद्गादिभोजिनाम् ॥ युद्धाध्वातपसंताप-  
 विषमद्यरुजासुच ॥ ९ ॥ माषादेरनुपानंतुधान्या-  
 म्लंदधिमस्तुवा ॥ मद्यंमद्योचितानांतु सर्वमांसे  
 षुपूजितम् ॥ १० ॥ अमद्यपानामुदकं फलाम्लंवा  
 प्रशस्यते ॥ क्षीरं घर्माध्वभाष्यस्त्रीकृान्तानाम-  
 मृतोपमम् ॥ ११ ॥

भाषानुवाद—भिलावा और तुर ( जिसके केशरके समान पत्ते और उड  
 दके समान होतेहैं ) तेलको छोडकर समस्त तैलादि चिकने पदार्थोंके भक्षण  
 में उष्णपानी अनुपानहै ॥ ६ ॥ कई आचार्य कहतेहैं कि तैल—यूप—खटाई—  
 काजी—सहत और पीसेहुए अन्न ( सत्तुआदि के भक्षणमें ठडा पानी अनुपान  
 है ॥ ७ ॥ मद्यपानजन्य पीडा और विषभक्षणमें दही और दूध अनुपान है कई  
 आचार्य पीसे अन्नभक्षणका अनुपान सुखोदक ( थोडा उष्णपानी ) कहतेहैं ॥ ८ ॥  
 धान, मूग आदि भक्षण करनेवालोंको दूध या मासरस अनुपान है, युद्धमार्ग धूप  
 अग्निज्वाला इनसे थकेहुओंको और विपज तथा मद्यज रोग युक्त पुरुषोंकोभी  
 दूध या मासरसही अनुपानहै ॥ ९ ॥ उडद आदि का अनुपान काँजी अथवा  
 मट्टाहै, मासभक्षणमें मद्यपीनेवालोंको मद्यही अनुपानहै ॥ १० ॥ मद्य न पीनेवा-  
 लोंको जल या फलकी खटाई अनुपानहै, घाम ( धूप ) मार्ग ( वाट—पथ—  
 रस्ता ) पढाने या पढने और स्त्रियोसे थकेहुवे मनुष्यको दूध अमृतके समान  
 अनुपान है ॥ ११ ॥

क्षुराक्षुराणांस्थूलानामनुपानंमधूदकम् ॥ निरा-  
मयानांचित्रंतुभुक्तमध्येप्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥ स्नि-  
ग्धोष्णंमारुतेपथ्यंकफैरूक्षोष्णमिष्यते ॥ अनु-  
पानंहितंचापिपित्तमधुरशीतलम् ॥ १३ ॥ हितं  
शोणितपित्तिभ्यः क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ अर्कशो-  
लुशिरीषाणामासवास्तुविपातिषु ॥ १४ ॥ अतः  
परं तुवर्गाणामनुपानंपृथक्पृथक् ॥ प्रवक्ष्याम्यनु-  
पूर्वेणसर्वेषामेवमैशृणु ॥ १५ ॥

भाषानुवाद—मद्य ( मदिरा—दारू—शराब—ब्राडी ) से दुबले और अत्यंत  
मोटीको जलयुक्त मधु ( सहत ) अनुपान है रोगरहित मनुष्योको अनेक  
प्रकारकी दन्तु भोजनके मध्य २ ( बीच २ ) में खिलानाही अनुपान है ॥ १२ ॥  
वातरोगमे चिकना उष्ण कफरोगमें उष्ण म्ख्वा और पित्तमें मीठा तथा ठंडा  
अनुपान पथ्य है ॥ १३ ॥ रक्तपित्तमें दूध और ऊस ( साठें ) का रस  
अनुपान पथ्य है, विप्रजनित रोगमें अर्क ( आकडा—अकौवा ) शीठा और  
सिरसका आसव अनुपान है ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् वर्ग वर्गका पृथक् २  
अनुपान वर्णन करतेहैं ॥ १५ ॥

१ तत्रपूर्वसस्यजातीनांबदरास्त्वैदलानांधा-  
न्यास्लम् ॥ १६ ॥

२ अस्लानांफलानापद्मोत्पलकन्दासवः ॥ १७ ॥

३ कषायाणांदाडिमवेत्रासवः ॥ १८ ॥

४ मधुराणांत्रिकटुकयुक्तः कन्दासवः ॥ १९ ॥

५ तालफलादीनांधान्यास्लम् ॥ २० ॥

६ कटुकानादूर्वानलवेत्रासवः ॥ २१ ॥

७ पिप्पल्यादीनांश्वदंष्ट्रावसुकासवः ॥ २२ ॥

८ कृष्माण्डादीनांदावीकिरीरासवः ॥ २३ ॥

९ चंचुप्रभृतीनांलोधासवः ॥ २४ ॥

१० जीवन्त्यादीनां त्रिफलासवः ॥ २५ ॥

११ कुसुंभशाकस्य स एव ॥ २६ ॥

भाषानुवाद—१ सस्यजाति ( शूकधान्य—कुंवान्य—अमी वान्य ) खंडेवर और वेदल ( जिनकी ढाल वनती है जैसे, मूग, उडद, मसूर, मटर, तूवर, चने, आदि ) इनका काजी अनुपान है ॥ १६ ॥

२ खंडेफलोंका नीलेकमलके कदका आसव अनुपान है ॥ १७ ॥

३ कषेले भोजनका दाडिम तथा वेतका आसव अनुपान है ॥ १८ ॥

४ मीठे भोजनका सोंठ मिरच पीपल युक्त कदोंका आसव अनुपान है ॥ १९ ॥

५ ताडफल—नारियल—कटहर और केलेका काजी अनुपान है ॥ २० ॥

६ चिरपरे भोजनका दूब—नल—( देवनल ) और वेत्र ( वेत ) आसव अनुपान है ॥ २१ ॥

७ पीपल पीपलामूल—चव्य—( चाभ ) चित्रक ( चीता ) अदरक काली मिर्च—गजपीपल—रेणुक—अजमोदा—इन्द्रजव—पाठा—जिरा—सरसों—पहाडी नींबूफल—हींग—भारगी—महुआ—अतीस—वच—वायविडग और कटुकी इस पिप्पलादि वर्गका गोखरू वसुक ( वुक केदारगिरी वगड़लप्रसिद्ध ) का आसव अनुपान है ॥ २२ ॥

८ कूप्माड ( कटु ) लौकी ( सफेद फूलका कटु ) और तरबूज आदि शाकोंका दावी और करीनलका आसव अनुपान है ॥ २३ ॥

९ चचु ( लाली ) जाई जुही जीवती ( शाकभेद ) कुदर करहारी भिलावा वृद्धदारुक वृक्षादनी ( वृक्षभेद ) फजी ( वाड ) सेमर रीठा वनस्पति प्रसव ( वृक्षभेद ) शण ( अवाडेकी भाजी दक्षिणमें प्रसिद्ध ) और कचनार इन सबोंका लोदका आसव अनुपान है ॥ २४ ॥

१०—११ जीवत्यादि वर्गका और कसूभ सागका त्रिफलेका आसव अनुपान है ॥ २५ ॥ २६ ॥

१ शूकधान्य और ।

२ कुंवान्य कोदु सावा वासके बीज और प्रियगु आदिको कहते हैं ।

३ अमीधान्य उसको कहते हैं जो कि बिनही ऋतुमें उत्पन्न है ।

४ जीवत्यादिवर्ग विस्तारपूर्वक मुश्रुतयें देखो ।

१२ मण्डूकपर्ण्यादीनां महापञ्चमूलासवः ॥ २७ ॥

१३ तालमस्तकादीनामम्लफलासवः ॥ २८ ॥

१४ सैन्धवादीनांसुरासवआरनालंच ॥ २९ ॥

१५ तोयं वा सर्वत्रेति ॥ ३० ॥

भवन्ति चात्र—सर्वेषामनुपानानां माहेन्द्रं तोयमुत्तमम् । सात्त्विकं यस्य तोयं तत्तस्मै हितमुच्यते

॥ ३१ ॥ उष्णं वा ते कफे तोयं पित्ते रक्ते च शीतलम् ॥

दोषवद्गुवाभुक्तमतिमात्रमथापि वा ॥ ३२ ॥

यथोक्तेनानुपानेन सुखमन्नं प्रजीर्यति ॥ रोचनं बृ-

हणं वृष्यं दोषसंघातभेदनम् ॥ ३३ ॥

भाषानुवाद—१२ ब्राह्मी हुलहुल पीपल गुरच गोभी वावची मटर दोनो कटियाली बैंगन करेला एरड पित्तपापटा चिरायता ककोडा नीमतुरै वेतका अन्नभाग और गन्नादिका बृहत्पञ्चमूलका आसव अनुपान है ॥ २७ ॥

१३ ताटकं गूदे आदिका खट्टे फलोंका आसव अनुपान है ॥ २८ ॥

१४ सैधानोन ममुद्रनोन विटनोन सौचलनोन साभरानोन और उद्भिदनोन ( जो कही खारकी भूमीमेंसे निकाला हुआ पानी सूर्य की उष्णतासे या अग्निसे जमाया जाता है ) इन सबोंका मद्य आसव और आरनाल अनुपान है ॥ २९ ॥

१५ अथवा सर्वत्र केवल जलही अनुपान उत्तम है ॥ ३० ॥

यहा ऐसा जानो कि सब अनुपानोंमें अतिरिक्त ( जो वर्षताहुवा पानीही पात्रमें गेलिया जावे ) वह उत्तम है या जिसको जो पानी अनुकूल हो उसको वही हित है ॥ ३१ ॥ वात और कफजनित रोगमें उष्ण पानी पित्त और रक्तजनित रोगमें ठंडा पानी अनुपानमें देना उचित है, दोषयुक्त या प्रमाणसे अधिक खायाहुवा अन्नभी ॥ ३२ ॥ उचित अनुपानसे मुखपूर्वक पचजाता है और उचित अनुपान गन्धिर्लक्षक—नष्टण ( दीर्यवर्द्धक ) पराक्रमविकाशक दोषनाशक ॥ ३३ ॥



तर्पणंमार्दवकरंश्रमक्लमहरंसुखम् ॥ दीपनंदोषश-  
 मनंपिपासोच्छेदनंपरम् ॥ ३४ ॥ वल्यंवर्णकरं  
 सम्यगनुपानंसदोच्यते ॥ तदादौकर्शयेत्पीतंस्था-  
 पयेन्मध्यसेवितम् ॥ ३५ ॥ पश्चात्पीतंवृंहयतित-  
 स्माद्वीक्ष्यप्रयोजयेत् ॥ स्थिरतांगतमाक्लिन्नमन्न  
 मद्रवपायिनाम् ॥ ३६ ॥ भवत्यावाधजननमनु-  
 पानमतःपिबेत् ॥ नपिवेच्छ्वासकासार्तोरोगेचा-  
 प्यूर्ध्वजत्रुगे ॥ ३७ ॥ क्षतोरस्कःप्रसेकीचयस्य  
 चोपहतस्स्वरः ॥ पीत्वाऽध्वभाष्याध्ययनगेयस्व-  
 प्नान्नशीलयेत् ॥ ३८ ॥ प्रदूष्यामाशयंतद्धितस्य  
 कंठोरसिस्थितम् ॥ स्यन्दाग्निसादच्छर्द्यादीना-  
 मयाजनयेद्बहून् ॥ ३९ ॥

भाषानुवाद—तृप्ति तथा कोमलताकारक—श्रम भ्रमहारक—सुखदायक—अग्नि  
 उन्नायक दोष (वात—पित्त—कफ) कोपसहारक तृप्ता (प्यास) दारक ॥ ३४ ॥ और  
 बल तथा वर्णकारक होताहै सो अनुपान यदि भोजनके पहलेही पान किया जावे  
 तो शरीरको दुर्बल और मध्यमें जैसाका तैसा ( घटावे न बढावे ॥ ३५ ॥ और  
 अतमें पीनेसे शरीरको पुष्ट करताहै इसलिये विचारके अनुपान देवे जल आदि  
 पीयेविन भाक्षित अन्न स्थिर और कडा रहनेसे तृप्ति देनेवाला नहीं होता ॥ ३६ ॥  
 वरन पीडाकारक हो जाताहै इसलिये भोजनके पश्चात् अनुपान पीनाही चाहिय  
 श्वास कासवाला ठुड्डीसे ऊपरके अगमें जिसके रोग हो वह ॥ ३७ ॥ उर क्षती  
 ( जिसके हृदयमें घाव होगयाहो ) प्रसेकी ( जिमके मुखसे छॉरे गिरे वा  
 पसीनेमें भीगाहुवा ) और जिसका स्वर ( शब्द ) बैठगया हो ये मनुष्य अनु-  
 पान न पीवे और इनसे व्यतिरिक्त ( रोगरहित मनुष्य ) भी अनुपान पीकर  
 मार्गका चलना अधिक बोलना पढना गाना और सोना ये कर्म कदापि न करें  
 ३८ ॥ उक्तकर्मोंके करनेसे बट अनुपान आमाशयको दूषित करके उस

मनुष्यके कठ और हृदयमें प्राप्त होकर कफस्त्राव मदाग्नि और वमन ( उलटा ) आदि रोगोको उत्पन्न करता है ॥ ३९ ॥

गुरुलाघवचिन्तेयंस्वभावंनातिवर्तते ॥ तथासं-  
रकारमात्रांतकालांश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥ मंद  
कर्मनिलारोग्याः सुकुमारास्तुखोचिताः ॥ ज-  
न्तवोयेतुतेषांहिचिन्तेयंपरिकीर्तिता ॥ ४१ ॥ व  
लिनःखरभक्षाश्चयेचदीप्ताग्रयोनराः ॥ कर्मनि  
त्याश्चये तेषानावश्यंपरिकीर्तयेत् ॥ ४२ ॥ इद  
मखिलमुक्तंसुश्रुतसंहितायांसूत्रस्थानेषट्चत्वा  
रिंशोऽध्याये ॥

भाषानुवाद—द्रव्याका भारीपन—हल्कापन—स्वभाव-संस्कार—मात्रा और समय ये कभी नहीं छूटते और सब एकसे दूसरा बलवान् हैं ॥ ४० ॥ इसलिये विचारके वैद्यन अनुपान देना चाहिये, क्यों कि आलसी मदाग्निवाले सुकुमार और मुखमें गहनेवाले मनुष्योंके लिये उक्त अनुपान विधिका विचारना है ॥ ४१ ॥ और जो बग्यान् काठिन भोजन करनेवाले तीव्राग्नि ( तेज अग्नि ) वाले तथा प्रति दिन परिश्रम करनेवाले पुरुषोंके लिये उक्त विधिके विशेष विचारकी कोई आवश्यकता नहीं यह अनुपानविधि सुश्रुतसंहिताके मूत्रस्थानके ४६ वें अध्यायमें लिखी है ॥ ४२ ॥

अथ कतिपयरोगेषु दुग्धानुपानान्याह ।

क्षीरोचितस्यप्रक्षीणश्लेष्मणोदाहृतृड्ढतः ॥ क्षीर-  
पित्तानिलार्तस्यपथ्यसप्यतिसारिणः ॥ ४३ ॥  
तद्वपुर्लघनोत्तसंप्लुष्टंवनसिवाग्निना ॥ दिव्यांवु  
जीवयेत्तस्यज्वरंचाशुनियच्छति ॥ ४४ ॥ सं  
स्फुटंशीतिसुष्णंवातस्माद्धारोष्णमेववा ॥ त्रिभ

ज्यकालेयुंजीतज्वरिणंहंत्यतोऽन्यथा ॥ ४५ ॥ प  
यःसशुंठीखर्जूरमृद्वीकाशर्कराघृतम् ॥ शृतशी  
तमधुयुतंतृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ ४६ ॥ तद्वद्वा-  
भावलायष्टीसारिवाकणचंदनैः ॥ चतुर्गुणेनांभ  
सावापिप्पल्यावाशृतंपिवेत् ॥ ४७ ॥

भाषानुवाद—अब कितनेक रोगोंपर दूधके अनुमान कहतेहैं, दूध देने योग्य  
( जिसके शरीरको दूध अनुकूल हो ) उसको—क्षीण -कफवालेको—दाह तथा  
तृषावाले को—पित्तवातसे पीडितको और अतिसारवाले मनुष्यको दूध देना पश्य  
है ॥ ४३ ॥ वह दूध जैसे ग्रीष्माग्निसे तप्त वनके समान लवनेसे तपायमान  
रोगांके शरीरको वर्षाके जलकी नाई जिला देताहै और उसके ज्वरकोभी शीघ्रही  
नाश करदेताहै ॥ ४४ ॥ औषधोंसे सिद्ध किया हुआ—ठंडा अथवा उष्ण गरम  
या धारोष्ण ( धारोंसे ही निकलाहुवा गरम २ ) दूधको ममयके अनुकूल रोगा-  
नुसार विचारकर जिसको जैसा हित समझे उसको वैसाही वैद्यने देना चाहिये,  
अन्यथा देनेसे अमृत समान दूध विपपानसदृश होकर ज्वरयुक्त मनुष्यको नष्ट  
करदेताहै ॥ ४५ ॥ सेंठ-खजूर ( खारक ) मुनक्का—मिश्री ( खाड ) और घी इन्होंसे  
युक्त दूधको औटाकर ठंडा करे और उसमें सहत मिलाकर पिलावे तो वह दूध  
दाह तृषा और ज्वरका नाश करताहै ॥ ४६ ॥ इसीप्रकार दाख खरेंटी मुलहटी  
सारिवा छोटी पीपल और चंदन इन सर्वसहित औटाकर ठंडा कियाहुवा दूध  
अथवा इनके काथमें सिद्ध कियाहुवा दूध अथवा चौगुने पानी करके सिद्ध कि-  
याहुवा दूध या केवल पिप्पलीसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलानेसे वह दूध दाह  
तृषा और ज्वर का नाश करताहै ॥ ४७ ॥

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पाश्वशूलाच्चिरज्वरात् ॥  
मुच्यतेज्वरितःपीत्वापञ्चमूलीशृतंपयः ॥ ४८ ॥  
शृतमेरण्डमूलेनवालविल्वेनवाज्वरात् ॥ धारोष्ण  
वा पयःपीत्वाविवृष्टानिलवर्चसः ॥ ४९ ॥ सरक्तं

पित्तातिसृतेस्सतृदूछूलप्रवाहिकात् ॥ सिद्धंशु-  
ण्ठी वलाव्याघ्रीगोकण्टकगुडैः पयः ॥ ५० ॥  
शोफसूत्रशङ्खद्वातविवन्धज्वरकासजित् ॥ वृश्ची-  
वविल्ववर्षाभूसाधितंज्वरशोफनुत् ॥ शिशि-  
पासारसिद्धं वाक्षीरसाशुज्वरापहम् ॥ ५१ ॥ वा-  
ग्भटेचिकित्सा स्थानेद्वितीयेऽध्याये ॥

भाषानुवाद—पञ्चमूलमें सिद्ध कियेहुये दूधके पिलानेसे ज्वरयुक्त रोगीभी कास श्वास शिरकी शूल पार्श्वशूल और पुराने ज्वरसे छूट जाताहै ॥ ४८ ॥ एरण्डमूलमें अथवा कच्चे बेलके गुठेमें ओटाकर सिद्ध किये हुये दुग्धपानसे रोगी ज्वरसे छूट जाताहै, वारोण दूधके पीनेसे अधोवायुका रुकना—मलकी रुकावट ॥ ४९ ॥ रक्त तथा फेनयुक्त अतिसार—और तृपा तथा शूलयुक्त प्रवाहिका ये सब रोग दूर होजातेहैं सोठ—खरेटी कटियाली गोखरू और गुड इनकरके सिद्ध किया ( धोटाया ) हुआ दूध पिलानेसे ॥ ५० ॥ शोध ( सूजन ) सूत्र तथा मलका रुकना—ज्वर और खासी इन सबका नाश करताहै तथा वृश्चिव, विल्व, सोंटी इनसे मिद्ध दूध सांसमके गोदमें मिद्ध कियाहुवा दूध ज्वरको शीघ्रही नाश करताहै ऐसा वाग्भटमे चिकित्सास्थानके दुसरे अध्यायमे लिखाहै ॥ ५१ ॥

सौभाग्यपुष्टिवलशुक्रविवर्धनानि किंसन्ति नोभु  
विवहृतिरसायनानि ॥ कन्दर्पवर्धिनिपरंतुसि  
ताज्य युक्तादुग्धादतेनमसकोपिमतः प्रयोगः  
॥ ५२ ॥ वै० जी० वि० ५ । इति दुग्धानुपानानि ॥

भाषानुवाद—ग्रेट्टिनाराजजी अपनी स्त्रीसे कहतेहैं कि हे कन्दर्पवर्धिनि ( काम-  
देवकोवटानेवाली स्त्री ) सुदरता—पुष्टता—बल और वीर्यको वटानेवाली रसायन  
रूप व्यावृत्तनी वस्तुएँ पृथ्वीमे नहींहैं किन्तु बहुतरी हैं परन्तु मिश्री और

१ शाल्पणी ( जिसे गोंडदेशमे शाल्पणीभी कहतेहैं ) २ पृथिवी ( जिसे मध्य-  
दशमे चक्रमें और पीठपनी ) ३ छोटी कटियाली ४ बड़ी कटियाली और ५  
गोरख रंगे लघुपद्म कहतेहैं ।

वृतसहित दूध जैसा सुदरता—पुष्टता—बल और वीर्यको बढ़ानेवाला है तैसा मे-  
गतमे कोई दूसरा प्रयोग (उपाय) नहीं है ॥९२॥ ये दूधके अनुपान वर्णन किये ।

अथ योगराजगुग्गुल्वनुपानानि ।

रास्त्रादिकाथसंयुक्तोविविधं हन्तिमारुतम् ॥ कां  
कोल्यादिशृतात्पित्तकफमारग्वधादिना ॥ ५३ ॥  
दार्वीशृतेनमेहांश्चगोमूत्रेणैवपाण्डुताम् ॥ मेदो  
वृद्धिं चमधुनाकुष्ठेनिवशृतेनवा ॥ ५४ ॥ छिन्ना  
काथेनवातासंशोथंशूलं कणाशृतात् ॥ पाट  
लाकाथसहितोविषंमूषकजंजयेत् ॥ ५५ ॥ त्रि  
फलाकाथसहितोनेत्रार्तिहन्तिदारुणाम् ॥ पुन  
र्नवादेः काथेनहन्यात्सर्वोदराण्यपि ॥ ५६ ॥  
शार्ङ्गं० खं० २ अ० ७ । इतियोगराजगुग्गुल्वनु  
पानानि ॥

अब योगराजगुग्गुलुके अनुपानोंको वर्णन करते हैं। रास्त्रादि काथ सग वातरों-  
गको, काकोल्यादि काथ सग पित्तरोगको, आरग्वधाधि काथ सग कफरोगको ५३।  
दारुहलदीके काठे सग प्रमेहको गोमूत्र सग पांडुरोगको, सहत सग मेदोवृद्धिको  
निव्रके काथ सग कुष्ठको ॥५४॥ गुर्च (गुटवेर) के काथसग रक्तवातको, पिप-  
लीके काथसग शोथ तथा शूलको, सिरसके काथसग मूषकदश विषको ॥५५॥  
त्रिफलाके काथसग नेत्ररोगको और पुनर्नवा ( साठी ) के काथ सग देनेनें  
समस्त उदररोगको योगराज गुग्गुलु नाशकरता है ॥ ५६ ॥ ऐसा शार्ङ्गवरं  
दूसरे खण्डके सातवें अध्यायमें लिखा है ये योगराज गुग्गुलुके अनुपान कहे ॥

अथ नारायणचूर्णानुपानान्याह ।

दद्याद्युक्त्वानुपानेन तथा ध्माने सुरादिभिः ॥ गुल्मे  
च दरनीरेण विदसंगे दधिमस्तुना ॥ ५७ ॥ उष्णा

बुभिश्रजीर्णे च वृक्षास्त्रैः परिकर्तृषु ॥ उष्ट्रीद्विगधेनो  
दरेषु तथा तत्रैकैः वागवाम् ॥ ५८ ॥ प्रसन्नया वात  
रोगे दाडिसांभो निरर्शसि ॥ द्विविधे च विषे दद्याद्  
घृतेन विषनाशनम् ॥ चूर्णनारायणं नासदुष्टरोग  
गणापहम् ॥ ५९ ॥ शार्ङ्गसं० २ अध्याय ६ ॥

भाषानुवाद—अब नारायणचूर्णके अनुपानोको वर्णन करते हैं, आध्मान  
( पेटफूलने ) में मदिरा आदिके सग गुल्ममें वेरके काथ संग मलवद्धमे दही  
के पानीनंग ॥ ५७ ॥ अजीर्णमें उष्ण ( गरम ) पानीसग परिकर्त ( गुदामे कत-  
रनेके समान पीडा करनेवाले ) रोगमें अमलीके काथसग, उदररोगमें ऊटनीके  
दूधसग अथवा गजकी छछसग ॥ ५८ ॥ वातरोगमें सुरा मडसग अर्श ( मूल-  
व्याधि, ने अनारके रससग और स्थावर तथा जगमविषमें घीके सग और  
उत्तररोगोंमें व्यतिरिक्त रोगोंमें जैसा योग्य अनुपान समझे उसके सग देनेसे यह  
नारायणचूर्ण उक्त रोगादिसमस्त दुष्टरोगोंका नाश करता है ॥ ५९ ॥ ऐसा शार्ङ्ग-  
धरसहितके दूसरे खंडके छठवे अध्यायमें लिखा है ॥ इति नारायणचूर्णानुपानानि ।

अथ निर्गुण्डयनुपानानि ।

प्रस्थनिर्गुण्डीचूर्णस्य गोमूत्रेण ससंपिवेत् ॥

दशरात्रप्रयोगेण कुष्ठनाशो भवेद्भ्रुवम् ॥ ६० ॥

निर्गुण्डीचूर्णमादाय घृतेन सह भक्षयेत् ॥ कृशस्तु

दुर्बलो वापि वलवीर्ययुतो भवेत् ॥ ६१ ॥ निर्गुण्डी

चूर्णमादायपि वेदुष्णेन वारिणा ॥ सप्तरात्रप्रयो-

गेण रोगमुक्तो भवेन्नरः ॥ ६२ ॥ निर्गुण्डीमूलमु-

द्धृत्य गृहे च धारयेद्बुधः ॥ नश्यन्ति सर्वविघ्नानि गृहा-

न्नागाश्च सर्वशः ॥ ६३ ॥ इति निर्गुण्डयनुपानानि ॥

१ शरादोषणं तद्वज्ज्यमत्र विचक्षणं ॥ शरावाभ्या भवेत्प्रसन्नश्चतु प्रस्थैस्तथा-  
५७१ ॥ १ ॥ पा०

अथभृंगराजानुपानानि ॥ भृंगराजपत्ररसं कृष्ण-  
जीरसमंपिबेत् ॥ तैलेन सहसंदद्याद्वलीपलितव-  
र्जितः ॥ ६४ ॥ भृंगराजरसंचैव गुडूचीरससंयुतम् ॥  
मासमात्रप्रयोगेण सर्वव्याधिर्विनश्यति ॥ ६५ ॥  
॥ इति भृंगराजानुपानानि ॥

भाषानुवाद—अब निर्गुण्डीके अनुपान कहते हैं १ प्रस्थ ( ५३ तोलें ४ मासे भर ) निर्गुण्डीके चूर्णको गोमूत्र सग दशरात्रि पर्यन्त पिलानेसे कुष्ठ ( कोढ ) दूर होजाता है ॥ ६० ॥ निर्गुण्डी चूर्णको घी के सग सेवन करनेसे कृश तथा बलहीनभी मनुष्य बलवीर्ययुक्त हो जाता है ॥ ६१ ॥ निर्गुण्डी चूर्णको गरम २ पानीके सग सात रात्रिपर्यंत सेवन करनेसे रोगरहित मनुष्य होजाता है ॥ ६२ ॥ निर्गुण्डीके मूल ( जड़ को उखाडके यदि गृहस्थ अपने घरमे रखे तो उसके घरमें सर्प नही रहता और सब प्रकारके त्रिघ्न दूर होजाते हैं ॥ ६३ ॥ अब भृंगराजके अनुपान कहते हैं, भृंगराजके पत्तोंके रसको कालेजीरेके अथवा तैलके सग पान करे तो वह मनुष्य वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान बलवान् रहे ॥ ६४ ॥ भृंगराजके रसको गुर्चके रस सग १ मास पर्यन्त पीये तो सब प्रकारके रोग दूर होय ॥ ६५ ॥

अथ सकलरोगेषु हरीतक्यनुपानानि ।

सितायुक्ताचशरदिहेमन्तेनागरेणच ॥ शिशिरेपि  
प्पलीयुक्तावसन्तेमधुनासह ॥ ६६ ॥ ग्रीष्मेच गुड-  
संयुक्तावर्षासुलवणेनच ॥ अनेनैव विधानेन भक्ष-  
येद्यो हरीतकीम् ॥ ६७ ॥ तस्य वृद्धिर्वलं वीर्यमा-  
रोग्यं स्थिरयौवनम् ॥ अग्निर्दहति काष्ठानि तनुरो-  
गान् हरीतकी ॥ ६८ ॥ कदाचित्कुप्यते मातानो-  
दरस्था हरीतकी ॥ मातेव सर्वदा ज्ञेया हितदात्री  
हरीतकी ॥ ६९ ॥ इदमखिलमुक्तं गौरिकांचलि-

कालत्रे ॥ अन्यच्च ॥ ग्रीष्मे तुल्यगुडांसुसैन्धवयु-  
तांमेषावनह्येस्वरे तुल्यां शर्करयाशरदमलयाशु-  
ण्ठयातुषारागमे ॥ पिप्पल्याशिशिरेवसन्तसमये  
क्षौद्रेणसंयोजिताराजन्प्राप्यहरीतकीमिवरुजो  
नश्यन्तुतेशत्रवः ॥ ७० ॥ मदनपालनिघंटौ ॥

भाषानुवाद—अब सब रोगोपर हरीतकी (हर्ड) के अनुपानोको कहते हैं। शरदृक्तुमें मिश्रके सग हेमतमे सोंठके सग शिशिरमें छोटी पीपलके सग वस-  
न्तमें सहतके सग ॥६६॥ ग्रीष्मक्तुमें गुडके सग और वर्षामे सैन्धव (सेधानोन)  
के सग हरीतकी ( हिरडा, हर्ड ) को खानेसे ॥ ६७ ॥ मनुष्य रोगरहित और  
बलवीर्य सहित आयुर्पर्यन्त रहता है, जैसे अग्नि काष्ठको दग्ध करदेती है तैसेही  
शरीरके समस्त रोगोको हरीतकी नाश करदेती है ॥ ६८ ॥ कोई समय अपने  
बालकपर माता क्रोधित हो जाती है पर पेटमें हरीतकी जाकर कुपित नहीं  
होती इस लिये माताके समान-हित करनेवाली हरीतकी ( हर्ड ) को जानना  
चाहिये ॥६९॥ ये निर्गुंडी भृगराज और हरीतकी के उक्त अनुपान गोरिका-  
चलिका तत्रमें लिखे हैं और हरीतकीके अनुपान इसी प्रकार मदनपालनिघटुमें  
भी लिखेहैं ॥ ७० ॥

गुडूच्यनुपानान्याह ।

घृतेनवातंसगुडाविवंधंपित्तंसिताढयामधुनाकफ  
श्च ॥ वातास्त्रमुग्रंरुबुतैलमिश्राशुण्ठयामवातंश  
मयेद्गुडूची ॥ ७१ ॥ मद० निघं० अमृतास्वर  
सोहन्तिक्षौद्रयुक्तोहिकामलाम् ॥ शार्ङ्गधरेण  
चोक्तत्वाच्छोकोयंरचितोमया ॥ ७२ ॥ समधु  
च्छिन्नास्वरसोनानामेहनिवारणः ॥ वदन्तिभि  
पजः सर्वेशरदिन्दुनिभानने ॥ ७३ ॥ वै० जी०



विलासे ४। जीर्णज्वरंकफकृतंकणयासमेतदिच्छ  
 न्नोद्भवोद्भवकषायकएषहन्ति ॥ रामोदशास्य-  
 भिवरामइवप्रलंबंरामोयथासमरमूर्द्धनिकार्तवी-  
 र्यम् ॥७४॥ वै०जी०वि० १। अमृताक्वाथकल्का-  
 भ्यांसक्षीरंविषचेद्घृतम् ॥ वातरक्तंजयत्याशुकु-  
 ष्ठंजयतिदुस्तरम् ॥ ७५ ॥ शार्ङ्ग०खं० २ अ० ९॥

भाषानुवाद—गुडूचीके अनुपानोंको वर्णन करतेहैं घृतके सग वादीके  
 गुडके सग विषध ( मलके रुकने ) को मिश्रिके सग पित्तको मधु ( सहत  
 के सग कफको एरडतैल सग वातरक्तको और सोंठ सग देनेसे आमवातके  
 गुडूची (गुर्च) दूर करतीहै, ऐसा मदनपाल निघटुमें लिखाहै ॥७१॥ गुडूचीके  
 स्वरस ( गिलीगुर्चसे निकाला हुआ रस ) सहतके साथ पिलानेसे कामल  
 ( कमल—पीलिया ) का नाश करदेताहै ऐसा शार्ङ्गधरजीने स्वसहितामे द्विती  
 खडमें किसी एक श्लोकके चरणमे कहाहै, इसलिये यहा हमने श्लोक बनाकर  
 लिखाहै ॥७२॥ लोलिवराजजी अपनी स्त्रीसे कहते हैं कि हे शरद्भक्तुके चन्द्र  
 मान मुखवाली स्त्री ! समस्त वैद्योंका तथा मेराभी यही कहनाहै कि गुडूचीके  
 स्वरस सहतके सग सेवन करनेसे नाना प्रकारके प्रमेह ( परमे ) नाश  
 होजाते हैं ॥७३॥ और गुडूची (गुर्च)का क्वाथ छोटी पीपलके चूर्ण सग लेनेसे  
 कफकृत जीर्णज्वरको तैसे नाश करताहै जैसे रामचन्द्रजी रावणका बलदेव  
 प्रह्लादमुरका और परशुरामजी सहस्रार्जुनका नाश करते भये यह वैद्यजीवन  
 लिखाहै ॥७४॥ गुर्चके क्वाथ या कल्कमे दूध सहत घृतको ओठावे जब घृ  
 ( घी ) मात्र शेष रहजावे उमे छानके इसे गुडूचीघृत ( अमृताघृत ) कहें  
 इसके सेवनमे वातरक्त और कुष्ठ दूर होताहै ऐसा शार्ङ्गधरमे लिखाहै ॥ ७५ ॥

गुडूचीस्वरसःकर्पक्षौद्रंस्यान्माषकोन्मितम् ॥ से-  
 न्धवंक्षौद्रतुल्यंस्यात्सर्वमेकत्रमर्दयेत् ॥ ७६ ॥  
 अंजयन्नयनंतेनपिष्टार्मतिमिरंजयेत् ॥ काचं

कंडूलिंगनाशं शुक्लकृष्णगताङ्गदान् ॥ ७७ ॥

शार्ङ्ग० खं० ३ अ० १३ ॥

भाषानुवाद—गुरुचके १ कर्ष ( १० मासे ) रसमे १ मासा सहत और १ मासा सेधानोंन मिलाकर खरलकरे और इसको नेत्रमे लगावे तो ॥७६॥ पिष्टार्म रोग तिमिर ( दिनोधी ) काचत्रिदु खुजाळ लिंगनाश और नेत्रके श्वेत तथा काले विभागमे जो बुल्ल नेत्र रोगहो सो सब दूर होय ॥७७॥ ऐसा शार्ङ्गधरके ३ खडके ॥ १३ ॥ वे अव्यायमे लिखा है ॥

अथ नेत्ररोगे पुनर्नवानुपानानि ।

दुग्धेन कंडूक्षौद्रेण नेत्रस्त्रावं च सर्पिषा ॥ पुष्पतैले

न तिमिरं कांजिकेन निशांधताम् ॥ पुनर्नवाजय

त्याशुभास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७८ ॥ शार्ङ्ग०

खं० ३ अ० १३ ॥

भाषा०—अब नेत्ररोगपर पुनर्नवा राठी के अनुपानोकांभी कहते हैं, पुनर्न-  
वाको दूधमे घसके नेत्रमे लगानेसे नेत्रोकी खुजाळ सहतमें घसकर लगानेसे  
त्रस्त्राव ( नेत्रोसे जम्का बहाव , घांमे घसकर लगानेसे फूट्टी तेलमे  
लगानेमे तिमिर ( दिनोधी ) और कांजिके घासकर लगानेसे नक्ताध ( रतोधी )  
ये सब नेत्रोके रोग दूर होने है ॥७८॥ येभी शार्ङ्गधरके ३ रे खडके १३ वे  
अव्यायमे लिखा है ॥

अथ त्रिफलानुपानानि ।

एकाहरीतकी योज्या द्वौ च योज्यो विभीतको ॥

चत्वार्यासलकान्येव त्रिफलेषा प्रकीर्तिता ॥ ७९ ॥

त्रिफलाशोथमेहघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ दीप

नीश्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहन्त्री रसायनी ॥ सर्पिर्मधुभ्यां

तं युक्तं सेवने त्रासयाजयेत् ॥ ८० ॥ शार्ङ्ग० खं० २

अ० २। पालत्रिकोद्धवं काथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ॥

वातश्लेष्मकृतंहन्तिशोथंवृषणसंभवम् ॥ ८१ ॥

शार्ङ्ग० खं० २ अ० २। क्षौद्रेणत्रिफलाकाथः  
पीतोमेदोहरःस्मृतः॥शीतीभूतंतथोष्णांवुमेदोह

क्षौद्रसंयुतम् ॥ ८२ ॥ शार्ङ्ग० खं० २ अ० २।

त्रिफलारग्वधकाथश्शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥ रक्त-

पित्तहरोदाहपित्तशूलनिवारणः ॥ ८३ ॥ शा०

खं० २ अ० २। त्रिफलायारसः क्षौद्रयुक्तोजय

तिकामलाम् ॥ शार्ङ्गधरेणचोक्तत्वाच्छ्लोकोयंर-

चितोमया ॥ ८४ ॥ मृतायस्त्रिफलायष्टिचूर्णम-

धुधृतान्वितम् ॥ दिनांतिलेढिनित्यंसरतौचटक

वद्भवेत् ॥ ८५ ॥ इति ग्रंथांतरात् ॥

भाषानुवाद—अब त्रिफलाके अनुपान वर्णन करतेहैं— १ हरीतकी ( हर्ड  
२ बहेडे ४ आवलेके योग को त्रिफला कहतेहैं, अथवा १ भाग हर्ड उससे दून  
बहेडा—उससे दुना आवला इनके योगको त्रिफला कहतेहैं ॥ ७९ ॥ त्रिफलाके  
चूर्णको नित्य सेवन करनेसे शोथ—प्रमेह—विषमज्वर—कफ—पित्त—कुष्ठ इन सबका  
नाश होताहै और अग्निदीप्त होतीहै तथा रोगरहित वह मनुष्य होकर अपन  
पूर्णायुको प्राप्त होताहै और उसका बलवीर्य नित्य वर्द्धितही होजाताहै इस  
त्रिफलाचूर्णको नित्य रात्रि समय सहत और घीके—सग यदि सेवन करे  
समस्त नेत्ररोग दूर होजातेहैं ॥ ८० ॥ और त्रिफलाके काथको गोमूत्र सग पीने  
वादी तथा कफसे उत्पन्न भई पोतोंकी शोथ (सूजन) भी दूर होजातीहै ॥ ८१ ॥  
त्रिफला काथ सहत सग पिलानेसे मेदोवृद्धि दूर करताहै और इसी प्रकार  
गरम पानीभी ठढाहोनेपर सहत सग पानेसे मेदका नाश करताहै ॥ ८२ ॥ य  
त्रिफलाके काथको बहेडेकी भीतरकी गुठली ( मींगी बीजा ) शर्करा और स  
सग पिलावे तो रक्तपित्त दाह और पित्तशूल ये सब दूरहोय ॥ ८३ ॥ ये  
शार्ङ्गधरके २ रे खंडके २ रे अध्यायमे लिखाहै, यदि त्रिफला

क्राथको केवल सहत सग पिलावे तो कामला दूर होय ऐसाभी शार्ङ्गध-  
रजीने अपने ग्रथमे कहीं लिखाहै इस लिये हमने यहा श्लोक बनाकर लिखाहै ॥  
॥८४॥ त्रिफला चूर्ण सहत, घी और कातिसार इन तीनोंके सग नित्य रात्रिको  
सेवन करे तो वह पुरुष मैथुन ( स्त्रीसग ) जैसे चटक ( लाल ) मुनियाके सग  
करताहै तैसे करे अर्थात् कभी थके नहीं ॥ ८५ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितज्ञारसरामविरचितेसुभाषानुवादविभूषितेऽनुपानद-  
र्पणेऽन्नीपध्यनुपानविवेककथने चतुर्थः प्रमोद ॥ ५ ॥

अथातोमृत्युञ्जयादिरसानां धातूपधातूनाञ्चानुपा-  
नविवेकं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥ मृत्युर्विनिर्जितो य-  
स्मात्तेन मृत्युं जयोरसः ॥ मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वर  
निवृत्तये ॥ २ ॥ दध्युदकानुपानेन वातज्वरनिवर्ह-  
णः ॥ आर्द्रकस्य रसैः पानं दारुणे सन्निपातके ॥ ३ ॥  
जम्बीरद्रवयोगेन ह्यजीर्णज्वरनाशनः ॥ अजाजी-  
गुडसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ४ ॥ रसेन्द्रसार  
संग्रहे ज्वराधिकारे चोक्तमिदम् ॥

भाषानुवाद—अब इसके आगे मृत्युञ्जयादि रसोंका तथा सप्त धातु और  
सप्तोपधातुओंका अनुपानविवेक वर्णन करेंगे ॥ १ ॥ मृत्युको जीतनेसे मृत्युञ्जय  
रस कहलायाहै, मृत्युञ्जय रसको मधु ( सहत ) सग देनेसे सब प्रकारके ज्वर  
दूर होतेहैं ॥ २ ॥ दहीके जल सग देनेसे वातज्वरका—अदरकके रससग देनेसे  
मयकार सन्निपात वा ॥ ३ ॥ जम्बीरद्रव—( जम्बीरीका यत्रसे निकालाहुआ अर्क )  
सग देनेसे अजीर्णज्वरका और जीरा व गुडसग देनेसे मृत्युञ्जय रस विषम  
ज्वरका नाश करताहै ॥ ४ ॥ ऐसा रसेन्द्रसारसंग्रहमें ज्वराधिकारमें लिखाहै ॥

अथ वसन्तकुसुमाकररसस्यानुपानानि ।

शिलाजतुमधूपणैः क्षयगदेषु सर्वेष्वपि प्रमेहराजि  
रात्रिभिस्त्रिमधुशर्कराभिस्सह ॥ सितामलयजद्र

वैर्महतिरक्तपित्तेऽथवासितामधुसमन्वितैर्वृषभपल्ल-  
वानांद्रवैः ॥ ५ ॥ त्रिजातगजचन्दनैरपिचतुष्टिपु-  
ष्टिप्रदोमनोभवकरः परोवमिपुशंखपुष्पीरसैः ॥  
अभीरुरसशर्करामधुभिरम्लपित्तामयेपरेपुतुयथो-  
चितंननुगदेषुसंयोजयेत् ॥ ६ ॥ उक्तमिदं ग्रन्थांतरे ॥

भाषानुवाद—अब वसन्तकुसुमाकर रसके अनुपान वर्णन करते हैं—शिलाजीत  
और कालीमिरचके चूर्ण सहित सहतमें मिलाकर देनेसे समस्त क्षयरोगोंका—  
हलदी, सहत और मिश्रीसग देनेसे समस्त प्रमेहोंका—मिश्री और चंदनके काथसग  
देनेसे अथवा मिश्री, मधु और अडूसेके रससग देनेसे अत्यंत बढेहुए रक्तपित्तका  
वसन्तकुसुमाकर रस नाश करता है ॥ ५ ॥ त्रिजात ( तज—पत्रज—इलायची )  
गजपीपल और चंदनके साथ वसन्तकुसुमाकरको सेवन करानेसे तुष्टि  
( हर्ष ) पुष्टि ( प्रबलता ) को देता है और कामदेवको बढाता है, शखाहोलीके  
रससग देनेसे वमनका शतावरीके रस मिश्री और सहतसग देनेसे अम्लपित्तका  
वसन्तकुसुमार नाश करता है उक्त रोगोंसे अन्यरोगोंमें वैद्यने अपनी बुद्धयनुसार  
अनुपानोंकी योजना करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ऐसा ग्रन्थांतरे लिखा है ॥

अथ लोकनाथरसस्यानुपानानि ।

अरुचौनिस्तुषंधान्यंघृतभृष्टंसशर्करम् ॥ दद्यात्त-  
थाज्वरेधान्यंगुडूचीकाथमाहरेत् ॥ ७ ॥ उशीर  
वासककाथंदद्यात्समधुशर्करम् ॥ रक्तपित्तकफेश्वा-  
सेकासेचस्वरसंशये ॥ ८ ॥ अग्निभृष्टजयाचूर्ण  
मधुनानिशिदीयते ॥ निद्रानाशेऽतिसारेचग्रह-  
ण्यामंदपावके ॥ ९ ॥ सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्ण  
मुष्णजलैःपिवेत् ॥ शूलेजीर्णे तथाकृष्णामधुयुक्ता  
ज्वरोहिता ॥ १० ॥ प्लीहोदरेवातरक्तेछर्द्याचैव

गुदाङ्कुरे ॥ नासिकादिषुरक्तेषुरसदाडिमपुष्प  
जम् ॥ ११ ॥ दूर्वायास्स्वरसंनस्यंदद्याच्छर्कर  
यायुतम् ॥ कौलमज्जाकणं वह्निपक्षभस्मसशर्कर  
म् ॥ १२ ॥ मधुनालेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्यशा  
न्तये ॥ विधिरेषप्रयोज्यस्तु सर्वास्मिन्पोटलीरसे  
॥ १३ ॥ मृगाङ्केहेमगर्भे च मौक्तिकाख्येरसे तथा ॥  
इत्ययं लोकनाथाख्योरसः सर्वरुजोजयेत् ॥ १४ ॥  
शार्ङ्ग ० खं ० २ अ ० १२ ॥

भाषानुवाद—अब लोकनाथरसके अनुपानोंको वर्णन करते हैं । लोकनाथ  
रसको अरुचिर्गमगे निस्तुष धान्य ( छिलेहुये धनियाँ को घीमे भूजिके उसमें  
शायर मिलाकर उसके सग देवे, ज्वरमे धनियाँ और गुरचके काथसग देवे  
॥ ७ ॥ रक्तपित्त—कफ—ध्वाम—कास—और स्वरग्ग इन रोगोंमें सहतशकरयुक्त  
खस और अट्टसेके काथसग देवे ॥ ८ ॥ निद्रानाश अतिसार—समग्रहणी और  
भगग्गिमे येनीहुई भागके चूर्णको सहतमे मिलाकर उसके सग रात्रिके समय  
देवे ॥ ९ ॥ शूल और अर्जाणमे मोचरनोंन हट और पीपलके चूर्णसग उष्ण-  
जलमे देवे, ज्वरमें सहत और छंटीपीपलसग देवे ॥ १० ॥ ग्रीहोदर—वातरक्त—  
उच्छटी—गुदाङ्कुर और नवागीर ( नासिकासे रक्त गिरना ) इन रोगोंमें दाडिम-  
पुष्परससग देवे ॥ ११ ॥ तथा नासिकासे रुधिरग्नावमे दूबका रस शकर  
महित नाकमे सुधावे, वेरक्ती भीगी पीपल—मोरपखके चदबोकी भरम इन  
सत्रका महीनचूर्ण शर्करा सहित ॥ १२ ॥ सहतमें मिलाकर इसके सग  
लोकनाथ रसको उच्छटी ( वाति ) रोग और टुचकीमे देवे तो इन अनुपानोंसे  
उक्त समस्त रोगोंका यह लोकनाथरस नाश करता है, जैसी अनुपानविधि  
लोकनाथरसकी कहते हैं वेनीही पोटलीरसकी ॥ १३ ॥ मृगाङ्ककी चार  
मौक्तिकरसकी भी जानो, यह लोकनाथरस समस्त रोगोंको दूर करनेवाला  
है ॥ १४ ॥ ऐसा शार्ङ्गरसहितको दूमेरे खटके १२ वे अध्यायमे लिखा है ॥

अथ स्वर्णमालिनीवसन्तरसस्यानुपानानि ।  
 जीर्णज्वरेधातुगतेऽतिसारेरक्तान्वितेरक्तजट्टाष्टि-  
 रोगे ॥ घोरेव्यथेपित्तकृतेऽथरोगेवलप्रदोदुग्धयुतं  
 चपथ्यम् ॥ १५ ॥ वसन्तोमालिनीपूर्वःसर्वरोग  
 हरः शिशोः ॥ गर्भिण्यादेयमेतच्चजयन्तीपुष्पकै  
 र्युतम् ॥ सर्वज्वरहरंश्रेष्ठं गर्भपालनमुत्तमम् ॥ १६ ॥  
 ग्रंथांतरेचोक्तमिदम् ॥

भाषानुवाद—अब स्वर्णमालिनीवसन्त ( जिसे अनभिज्ञ लोग सुवर्णवसन्त  
 मालतीभी कहतेहैं उस ) के अनुपानोको वर्णन करतेहैं—स्वर्णमालिनीवसन्तको  
 छोटी पीपल और सहत सग सेवन करनेसे जीर्णज्वर धातुगतज्वर रक्तातिसार  
 अत्यन्त पीडायुक्त रक्तज नेत्ररोग और पित्तजनित सर्व रोग दूर होकर वलयुक्त  
 वह मनुष्य होजाताहै इससे दुग्ध युक्त पथ्य देना चाहिये ॥ १५ ॥ यह स्वर्ण-  
 मालिनीवसन्त रस उक्त अनुपानसेही बालकोंके रोगोंको दूर करताहै और  
 जयन्ती पुष्पके साथ देनेसे गर्भिणी स्त्रीके ज्वरको दूर करके गर्भकी रक्षा कर-  
 ताहै ॥ १६ ॥ ऐसा ग्रथान्तरमें लिखाहै ॥

अथ बृहन्मालिनीवसन्तरसस्यानुपानानि ।  
 बल्लप्रमाणंमधुपिप्पलीभ्यांजीर्णज्वरेधातुगतेप्रदेयः॥  
 छिन्नोद्भवासत्त्वसितायुतश्चसर्वप्रमेहेषुचयोजनीयः॥  
 ॥ १७ ॥ कृच्छ्राश्मरींनिहन्त्याशुमातुलुंगार्द्रकद्रवैः ॥  
 रसोवसन्तनामायंमालिनीपदपूर्वकः ॥ १८ ॥ भैष  
 ज्यसारामृतसंहितायामुक्तम् ॥

भाषानु०—अब बृहन्मालिनीवसन्तरसके अनुपानोंको वर्णन करतेहैं—  
 रतीभर बृहन्मालिनीवसन्तरसको सहत और छोटी पीपलके सग सेवन कराने  
 जीर्णज्वर और धातुगतज्वर दूर होय गुरच ( गिलोय ) सत्त्व और मिश्रीसं

देनेसे प्रमेहमात्र दूर होय ॥ १७ ॥ अदरकका रस और त्रिजोरेके रसके साथ देनेसे मूत्रकृच्छ्र और पथरी दूर होय ॥ १८ ॥ यह बृहन्मालिनीवसन्तरस भैषज्यसारामृतसहितामें लिखा है ॥

अथ पाशुपतरसस्यानुपानानि ।

तालमूलीरसेनैव ह्युदरामयनाशनः ॥ मोचारसे नातिसारं ग्रहणीतक्रसैधवैः ॥ १९ ॥ सौवर्चलकणा शुंठीयुतशूलं विनाशयेत् ॥ अर्शासिहन्ति तत्रेण पिप्पल्या राजयक्ष्मकम् ॥ २० ॥ वातरोगं निहं त्याशुशुण्ठीसौवर्चलान्वितः ॥ २१ ॥ शर्कराधान्ययोगेन श्लेष्मरोगश्च तत्क्षणात् ॥ अतः परतरोना स्ति धन्वंतरिमतोरसः ॥ २२ ॥ रसेन्द्रसारसंग्रहे जीर्णाधिकारे चोक्तम् ॥

भाषानुवाद—अब पाशुपतरसके अनुपानोंको वर्णन करते हैं—तालमूलीके रससंग उदररोगका—मोचरससंग अतिसारका—छाछ और सेंधेनोंन संग संग्रहणीका ॥ १९ ॥ सौचरनोंन—पीपल और सोंठ संग शूलका केवल छाछसंग अर्श (मसे—मूलव्याधि—बवासीर) का छोटीपीपल संग राजयक्ष्मा (क्षर्या) का ॥ २० ॥ सोंठ और सौचरनोंन संग वातरोगका—मिथ्री और धनियेसंग पित्तरोगका ॥ २१ ॥ छोटीपीपल और सहत संग देनेसे कफरोगका पाशुपतरस नाश करता है, इससे उत्तम कोई दूसरा रस नहीं है इसे धन्वतरिजीने सर्वोत्तम रस माना है ॥ २२ ॥ ऐसा रसेन्द्रसारसंग्रहमें अजीर्णाधिकारमें लिखा है ॥

अथ पर्पटीरसस्यानुपानानि ।

सहिं गुजीरकव्योपैश्शमयेद्बृहणीरसः ॥ दशमूलांभस्तावातल्वरं त्रिकटुनाशकम् ॥ २३ ॥ ज्वरं मधुकर्तारं पंचनां लेनसर्दजम् ॥ यक्ष्माणं मधुपिप्पल्या गोमूत्रेण गुदाकुरान् ॥ २४ ॥ शूलेचैरंडतैलेन पाण्डु



शोथंसगुग्गुलुः ॥ कुष्ठानिभंगमल्लातवाकुचीपञ्च  
 निंवकैः ॥ २५ ॥ धतूरबीजसंयोगान्महोन्मादवि  
 नाशिनी ॥ अपस्मारंनिहन्त्याशुव्योपनिंवदलै  
 स्सह ॥ २६ ॥ स्तनंधयशिश्नानांतुनितरांपर्पटीहि  
 ता ॥ पथ्यायाश्चूर्णसंयुक्ताव्याधींश्चान्यान्सुदुस्त  
 रान् ॥ २७ ॥ ग्रंथातरेचेदमुक्तम् ॥

भापानुवाद—अब पर्पटीरसके अनुपानोंको वर्णन करतेहैं—हींग—जीरा  
 और त्रिकटु ( सोंठ मिरच पीपल ) सग देनेसे सप्रहणीको दशमूलके काय  
 संग देनेसे वातज्वरको त्रिकटु सग देनेसे कफको ॥२३॥ मुलहटाके सारसग  
 देनेसे ज्वरको पचकोलके काढे सग देनेसे सब प्रकारके ज्वरको सहत और  
 छोटी पीपल सग देनेसे क्षयीको गोमूत्र सग देनेसे अर्शको ॥२४॥ एरड तेल  
 सग देनेसे शूलको गुग्गुलु सग देनेसे पाडु और शोथको भगरा भिलावा बावची  
 ओर नींबका पचांग इनके सग देनेसे कोढको ॥२५॥ धतूरेके बीजों सग देनेसे  
 उन्मादको त्रिकटु और नींबके पत्तो सग देनेसे मृगीको पर्पटी रस दूर करता  
 है ॥२६॥ यह रस दूध पीनेवाले बालकोंको अत्यंत हितकारीहै और हिडेंके चूर्ण  
 सग सेवन करनेसे यह पर्पटी रस अनेक प्रकारकी व्याधियोंका नाश करताहै  
 ॥ २७ ॥ ऐसा ग्रंथातरेमे लिखाहै ॥

अथ जयाजयन्त्योरनुपानानि ।

जयन्तीवाजयावाथक्षीरैः पित्तज्वरापहा ॥ मुद्गा  
 मलकयूपेणपथ्यं देयं घृतं विना ॥ २८ ॥ जयन्तीवा  
 जयावाथसक्षौद्रमरिचान्विता ॥ सन्निपातज्वरंह  
 न्तिरसश्चानंदभैरवः ॥ २९ ॥ जयन्तीवाजयावाथ  
 विषमज्वरनुद्घृतैः ॥ सर्वज्वरं सधुव्योपैर्गवांसूत्रेण  
 शीतकम् ॥ ३० ॥ चन्दनस्य कपायेण रक्तपित्तज्व

रापहा ॥ जयंतीवाजयावाथमाक्षिकेणचकास  
जित् ॥ ३१ ॥ जयन्तीवाजयावाथतण्डुलोदकपा  
नतः ॥ अश्मरींहन्तिनोचित्रंमूत्रकृच्छ्रन्तुदारुण  
म् ॥ ३२ ॥ जयन्तीवाजयावाऽथगोमूत्रेणयुतां  
पिवेत् ॥ हन्त्याशुकाकणंकुष्ठंसुलेपेनचतद्द्रुतम्  
॥ ३३ ॥ द्विनिष्कंकेतकीमूलंपिष्ट्वातोयेनपाययेत् ॥  
जयंतीवाजयावाथमेहंहन्तिसुराह्वयम् ॥ ३४ ॥  
जयन्तीवाजयावाथ मधुनामेहजिह्वेत् ॥ लोध्र  
मुस्ताभयात्तुल्यंकटूफलंचजलैःसह ॥ ३५ ॥ का  
थयित्वापिवेच्चातुमधुनासर्वमेहजित् ॥ जयंती  
वाजयावाथगुडैःकोष्णजलैःपिवेत् ॥ ३६ ॥ त्रि  
दोषोत्थंहरेद्गुल्मं रसश्चानंदभैरवः ॥ जयंतीवा  
जयाहन्तिशुब्धासर्वभगंदरम् ॥ ३७ ॥ जयंती  
वाजयावाथ तक्रेणग्रहणीप्रणुत् ॥ जयंती-  
वाजयावाथरसश्चानंदभैरवः ॥ ३८ ॥ रक्त  
पित्तेत्रिदोषोत्थेशीततोयेनपाययेत् ॥ जयन्तीवा  
जयावाथभृंगद्रावैर्निशांध्यनुत् ॥ ३९ ॥ जयन्ती  
वाजयावाथघृष्ट्वास्तन्येनचांजयेत् ॥ स्त्रावणंसर्व  
दोषोत्थंमांसवृद्धिचनाशयेत् ॥ ४० ॥ कृत्स्नमिदं  
मुक्तरसेन्द्रसारसंग्रहेज्वराधिकारे ॥

भाषानुवाद—अब जयाजयती बटीके अनुपानोंको वर्णन करतेहैं—जया तथा  
जयती बटी दूधके सग देनेसे पित्तज्वरका नाश करतीहै, इसपर घृत विनापथा  
गूंग और आम्रोंके मूत्रमात्र देना चाहिये ॥ २८ ॥ काली मिरच और  
नरत ना जया तथा जयतीको देनेसे नन्निपातज्वर दूर होय और इसी अनु-

पानसे आनदभैरव रसभी सन्निपातका नाश करताहै ॥ २९ ॥ घृतसग विष  
ज्वरका त्रिकटु चूर्ण और सहत सग समस्त ज्वरमात्रका गोमूत्र सग शीतज्वरका  
॥ ३० ॥ चदन काथसग रक्तपित्तज्वरका सहतसग खाँसीका ॥ ३१ ॥ दूध सग पांडु  
और शोथका चावलके पानीसंग देनेसे पथरी और मूत्रकृच्छ्रका जया तथा  
जयती बटी नाश करती है ॥ ३२ ॥ यदि जया अथवा जयतीको गोमूत्र सग  
सेवन करावे और गोमूत्रमें घसकर कुष्ठपर लेप लगावे तो काकणकुष्ठ दूर होय  
॥ ३३ ॥ दो निष्क ( ८ मासे ) केतकी मूलको पानीमें पीसकर उसके संग जया  
तथा जयतीको देवे तो सुराप्रमेह दूर होय ॥ ३४ ॥ सहतसग अथवा लोढ नागर-  
मोथा हर्ष और कट्फल ॥ ३५ ॥ इनके मधुयुत काथ सग जया तथा जयतीका  
सेवन करानेसे समस्त प्रमेह मात्र दूर होय गुड और कुष्ठ २ गरम पानीके सग  
जया या जयतीका सेवन करानेसे ॥ ३६ ॥ त्रिदोषज गुल्म दूर होय, और इसी  
अनुपानसे आनदभैरव रसभी नाश करताहै, जया तथा जयतीको सोंठ सग  
देनेसे भगदर मात्र दूर होय ॥ ३७ ॥ जया तथा जयतीका छाछ सग सेवन करानेसे  
सप्रहणी दूर होय जयन्ती जया तथा आनदभैरव ॥ ३८ ॥ इनमेंसे किसी एकको  
ठंडे जलके साथ देवे तो त्रिदोषज रक्तपित्त दूरहोय और जया तथा जयन्तीको  
भगरेके रस सग देनेसे रतौंधीका नाश होय ॥ ३९ ॥ जया तथा जयन्तीको स्त्रीके  
दूधमें घसकर नेत्रमें लगानेसे नेत्रस्त्राव मासवृद्धि और सर्व दोषज कर्णरोगभी  
दूरहोय ॥ ४० ॥ ये सब रसेन्द्रसार सप्रहमें ज्वराधिकारमे लिखाहै ॥

अथ सुवर्णभस्मानुपानानि ।

मत्स्यपित्तस्ययोगेनस्वर्णतत्कालदाहजित् ॥ भृ  
ङ्गयोगाच्चतद्रूप्यदुग्धयोगाद्वलप्रदम् ॥ ४१ ॥ पुन  
र्नवायुतंनेत्र्यंघृतयोगेरसायनम् ॥ स्मृत्यादिकृ  
द्वचायोगात्कान्तिकृत्कुंकुमेनच ॥ ४२ ॥ राजय  
श्माणंपयसानिर्विष्याचविषंहरेत् ॥ शुण्ठीलवंग  
मारिचैस्त्रिदोषोन्मादहारकम् ॥ ४३ ॥ मध्वाम  
लकचूर्णन्तुसुवर्णचेतितत्रयम् ॥ प्राश्यारिष्टगृही

तौर्पिमुच्यतेऽणसंकटात् ॥ शंखपुष्प्या वयोर्यथ  
विदार्याचप्रजार्थकः ॥ ४४ ॥ इति ग्रन्थांतरात् ॥

भाषानुवाद—अब सुवर्णभस्मके अनुपान वर्णन करते हैं—स्वर्ण भस्म मत्स्य-  
पित्ता औषधीके साथ सेवन करनेसे तत्क्षण दाहको दूर करे भगरेके रससग सेवन  
करनेसे स्त्रीप्रसग ( मैथुन—सभोग—सहवास ) में हितप्रद होय दुग्ध सग सेवनसे  
बल बढ़ावे ॥ ४१ ॥ साठीके साथ नेत्रोको हित करे घृतसग सेवनसे  
वयस्थापन—आयु—बल—बुद्धिकी वृद्धि और समस्त रोगनिवृत्ति करे वचके  
साथ सेवनसे बुद्धि बढ़ावे केशर सग सेवनसे काति ( तेज ) को करे ॥ ४२ ॥  
दुग्धसग राजयक्ष्मा ( क्षयी ) को हरे निर्विषी निर्विष सग विषरोगको और  
मोठ—लेंग—काली मिर्चीके साथ सेवनसे त्रिदोषजन्य उन्माद ( खपतीपने )  
को दूर करे ॥ ४३ ॥ आमलेके चूर्ण और सहत सग स्वर्णभस्म सेवन  
करनेसे प्रबल व्याधिगृहीत रोगीभी प्राणसकटसे छूट जावे अर्थात् आरोग्य  
होय शंखाहुलीके साथ सेवन करनेसे आयु बढ़ावे और विदारीकदके साथ  
सेवनसे स्वर्णभस्म पुत्रप्रद होता है ॥ ४४ ॥ ऐसा ग्रन्थांतरमें लिखा है ।

अथ रौप्यभस्मानुपानानि ।

भस्मीभूतरजतममलंतत्समं व्योमभानुः सर्वैस्तु  
ल्यंत्रिकटुरसवरंसारमाज्येन युक्तम् ॥ लीढं प्रातः  
क्षपयति नृणां यक्ष्मपाण्डूदरार्शश्श्वान्कासान्न  
यनतिमिरं पित्तरोगानशेषान् ॥ ४५ ॥ इति  
ग्रन्थांतरात् ॥

भाषानुवाद—अब रौप्य (चादीकी) भस्मके अनुपान वर्णन करते हैं चादीकी  
भस्म सगान अश्वत्थ और ताक्षभस्म लेंगे और इन सबके समान त्रिकुट्टाका  
रस अथवा चूर्ण लेंगे और इन सबमें कुछ अनुपानानुसार लोह भस्म योजित  
करके इन सबको घृतमें मिला कर प्रातःकाल सेवन करे तो क्षयी—पांडु—  
जर्ण—धान—काम नेत्रोका निमिर और पित्तरोग ये सब दूर होयें ॥ ४५ ॥  
ऐसा ग्रन्थांतरमें लिखा है ॥

इत ऊर्ध्वमथ ताम्रभस्मानुपानानीतः प्राग्नेकायु  
 वेदीयग्रंथाशयान्सन्निर्मिताः श्लोकाः ॥ दाहं  
 शर्करया हन्त्यनिलं पित्तं च श्रेष्ठया ॥ त्रिजातेन प्रमे  
 हांश्च गुल्मान्क्षारेण हन्ति वै ॥ ४६ ॥ कासेकफेवा  
 सकस्थरसेऽयूषणसंयुते ॥ श्वासेपन्नाविश्वयुतं  
 क्षयजिद्विरिजेन वै ॥ ४७ ॥ रजतं भस्मीभूतं क्षीणे  
 पयसा सदा संपेयम् ॥ पलभोजिनां च पुंसां पिशि  
 तरसेन भिषजाथवादेयम् ॥ ४८ ॥ मृतरौप्यं  
 वराकृष्णासंयुतं नात्र संशयः ॥ यकृतप्लीहहरं प्रोक्तं  
 यथा बलहरा बला ॥ ४९ ॥ शोफे पृथ्वीकेन देयं सु  
 वैद्यैः पाण्डौमंडूरेण सार्द्धं चतूर्णम् ॥ भस्मीभूतं रौ  
 प्यमाज्येन युक्तं ज्ञेयं कांतिक्षुत्करं विस्त्रसाहम् ॥ ५० ॥

भाषानुवाद—अब इसके आगे ताम्रभस्मके अनुपानसे पूर्व जितने श्लोक हैं वे सब अनेक वैद्यक ग्रंथोंके मतसे हमने बनाये हैं—मिश्री सग दाहका—त्रिफला सग वात और पित्तका—तज, पत्रज इलायचीके चूर्णसंग प्रमेहका—क्षार सग गुल्मका ॥ ४६ ॥ सोंठ—मिरच और पिप्पलीके चूर्ण युक्त अडूसेके रससग कासी और कफका भारगी और सोंठ सग श्वासका और शिलाजीत सग रौप्यभस्म क्षयिका नाश करता है ॥ ४७ ॥ क्षीणतामें रौप्यभस्म दुग्धके साथ पिलावे और मास भक्षण करनेवाले मनुष्योंको क्षीणताम मासरसके साथ रौप्य भस्म वैद्य देवे तो क्षीणता दूर होय ॥ ४८ ॥ त्रिफला और छोटी पीपलके चूर्णसहित रौप्यभस्म यकृत और पीहारेगका नाश करता है जैसे क्रीडासे पुरुषके बलका नाश स्त्री कर देती है तैसे ॥ ४९ ॥ शोथरोगमें पुनर्नवा ( साठी ) के साथ और पाडुमें मडूरके सग रौप्यभस्मको वैद्यने देना चाहिये और घृतयुक्त रौप्यभस्म कांति तथा क्षुवाका वृद्धि और जरा [ बुढ़ापे ] का नाश करता है ॥ ५० ॥

अथ ताम्रभस्मानुपानानि ।

दुग्धं खण्डश्चानुपानं प्रदद्यात्साज्यं भोज्यं त्याज्यं स  
स्लेनयुक्तम् ॥ वीर्यपुष्टिदीपनं देहहृदाढ्यदिव्याह  
ष्टिर्जायते कामरूपम् ॥ ५१ ॥ पूर्वेषामतमा  
लोक्य वैद्यैश्चाधुनिकैर्बुधैः ॥ स्वबुद्ध्यादापयेत्ता  
म्ररोगनाशनवस्तुभिः ॥ ५२ ॥ इति ग्रन्थान्तरात् ।

भाषानुवादः—अत्र ताम्रभस्मके अनुपान वर्णन करते हैं—एक रती ताम्रभस्म  
रसके रस संग सहत और घृतयुक्त नित्य सेवन करके ऊपरसे मिश्रियुक्त दूध  
पीवे तथा घृतयुक्त मिष्टपकान्न खावे और खड़े पदार्थोंको न खावे तो वीर्यपुष्टि—  
अग्नि दीपन देहदृढ-दिव्यदृष्टि और कामदेवके समान सुंदरता होय ॥ ५१ ॥ ताम्र-  
भस्मको नमस्तरंगोंपर छोटी पीपल और सहत संग देवे अथवा प्राचीन  
वैद्योंके मतानुसार अपनी बुद्धिसे रोगनाशक वस्तुओंके साथ आधुनिक वैद्यने  
ताम्रभस्मको देना चाहिये ऐसा गद्यांतरमें लिखा है ॥ ५२ ॥

अथ वज्रभस्मानुपानानि ।

जातीफलेनेतिकरोतिपुष्टिं वक्त्रे सुगंधिस्फटिकेन चो  
क्तम् ॥ प्राचीनैर्वैद्यैर्मृतरङ्गकोऽतः श्लोको मयाऽ  
यं रचितोऽत्र नूतनम् ॥ ५३ ॥ तुलसीपत्रसंयु  
क्तः प्रसेहनाशयेद्द्रुवम् ॥ घृतेन पांडुरोगं चटंक  
णैर्गुल्मनाशनम् ॥ ५४ ॥ निशयारक्तपित्त  
श्रमधुनावलवृद्धिकृत् ॥ खंडयासहपित्तघ्ननाग  
वल्क्याचवन्धनम् ॥ ५५ ॥ पिप्पल्याचाग्निमां  
सत्वं निशयाचोर्ध्वश्वासहृत् ॥ चंपकस्वरसेनैव  
दुर्गंधिनाशयेद्द्रुवम् ॥ ५६ ॥ निंबकस्वरसेना  
दपंदेहेदहनशान्तये ॥ कस्तूरीसंयुक्तवंगभक्षणा

द्वीर्यरोधकृत् ॥ ५७ ॥ खदिरकाथयोगेनचर्म  
 पाक्षिमलैस्सह ॥ पूगीफलेनसार्द्धवाऽजीर्णनाश  
 यतेक्षणात् ॥ ५८ ॥ नवनीतसमायुक्तमस्थिजीर्ण  
 नवंभवेत् ॥ दुग्धसार्द्धभवेत्तुष्टिर्जययास्तंभनंभ  
 वेत् ॥ ५९ ॥ लशुनैर्वातजांपीडानाशयेन्नात्रसं  
 शयः ॥ समुद्रफलसंयोगान्निर्गुण्ड्यासहभक्ष  
 णात् ॥ ६० ॥ कुष्ठनाशयतेक्षिप्रसिंहनादेमृगा  
 इव ॥ आघाटजटिकायोगात्षण्ढत्वंनाशये  
 द्ध्रुवम् ॥ ६१ ॥ देवपुष्पस्यसंयोगात्समुद्रफल  
 योगतः ॥ नागपत्ररसैर्लेपाह्लिंगवृद्धिःप्रजायते  
 ॥ ६२ ॥ गोरोचनलवंगेनतिलकान्मोहनंभवे  
 त् ॥ एरंडजटिकायोगेघर्षयित्वाचवंगकम् ॥ ६३ ॥  
 लेपयेच्चललाटेवैतदाशीर्षगदंजयेत् ॥ कौब्जेऽपा  
 मार्गमूलेनप्लीहेटकणसंयुतम् ॥ ६४ ॥ रसोनतैल  
 युङ्ग्नस्यमपस्मारनिषूदनम् ॥ पुत्राप्त्यैरासभीक्षी  
 रैस्तक्राढ्यंवातगुल्मनुत् ॥ ६५ ॥ यवानिकायुतं  
 वातेवाजिगंधायुतंतुवा ॥ जलोदरेत्वजाक्षी  
 रसंयुतंगुणकृद्भवेत् ॥ जातीफलाश्वगंधाभ्यांकटि  
 पीडानिवारणम् ॥ ६६ ॥ इति ग्रंथांतरात् ॥

भाषा०—अब वगभस्मके अनुपान वर्णन करतेहैं प्राचीन वैद्योंने ऐसा  
 कहना है—कि वगभस्म जायफलके सग पुष्टता और कपूरके सग मुखमें सुगंधि  
 करताहै इसलिये हमने यहां यह श्लोक बनाकर लिखा है ॥ ६३ ॥ तुलसीपत्र सग प्रमे  
 हका घृतसग पाडुका—सुहागे सग गुल्मका ॥ ६४ ॥ और हलदी सग देनेसे वग

भस्म रक्तपित्तका नाश करता है, सहतसग देनेसे बल बढ़ता है मिश्री सग पित्तका नागरवेलके पानसग दहक जकडनेका ॥५५॥ पिप्पली सग अग्निमदका-हलदी सग ऊर्ध्व ध्वासका—चपाके रससग दुर्गधिका ॥५६॥ और निंबके या नींबूके रस सग दाहका नाश करता है, कस्तूरीके भग वगभस्म सेवनसे वीर्यस्तम्भ होता है ॥५७॥ खैरके काथ और पक्षिमल सग देनेसे चर्मरोगका-सुपारीसग अजीर्णिका ॥५८॥ और मक्खन सग अस्थिजीर्ण ( हड्डियोंकी जीर्णता ) का नाश करता है, दुग्ध सग तुष्टि और भाग सग देनेसे वगभस्म स्तम्भन करता है ॥५९॥ लहसुनसग वातव्याधि समुद्रफल और सभाळके सग देनेसे ॥६०॥ कुष्ठका और चिरचि-द्राकी जडके साथ देनेसे नपुसकताका नाश करता है ॥६१॥ लोंग—समुद्रफल और वगभस्मको नागरवेलके पानके रसमें खलकरके लिंगपर लेप करे तो लिंग वृद्धि होय ॥६२॥ वगभस्मको गोरोचन और लवगमे मिलाकर तिलक करनेसे समोहन होय और एरुमूलसग वगभस्म घसकर ॥६३॥ ललाटपर लगानेसे शिरपांटा दूरहोय, कुब्ज ( कुवडेपनके ) रोगमें ऊगा ( आधाझाडे ) की जड सग तापतिल्लीमें सुहागेके सग ॥६४॥ यदि लहसुनके तैलमें वगभस्म मिलाकर नास देवे तो मृर्गा ( अपस्मार ) दूर होय, पुत्र प्राप्तिके लिये गधूँके दूध सग वायगोलेमें छाछसग ॥६५॥ वादीमें अजवान अथवा आसगध सग जलोदरमें बकरीके दूध सग और कटि ( कमर ) के दुखनेमें जायफल और आसगध सग वगभस्म देना चाहिये ॥६६॥ ऐसा ग्रन्थांतरमे लिखा है ॥

अथ जसदभस्मानुपानानि ।

शृणुसखे जसदस्य वदाम्यहं सुखकरं ह्यनुपानमरं वर  
म ॥ विविधतंत्रमतं सुविचार्यैव निधनगस्य गदाप  
हरं नृणाम् ॥ ६७ ॥ जसदभस्म जये त्रिसुगंधिना न  
नुसखे त्रिसलोद्भवमामयम् ॥ हरति शालिहिमेन  
तथा ज्वरं सह मृदुच्छदया लघुसायुजम् ॥ ६८ ॥ शिख  
रदीप्ययुतं शमयेज्ज्वरं जसदभस्म सखे शृणु शीत



जम् ॥ रुधिरजंत्वतिसारगदं वमिकणसितायुतमा  
 शुनिहन्तिवै ॥ ६९ ॥ मथरसेन धनं जयमन्दतानय  
 नरोगमथोषसिचांजितम् ॥ सृणिकया ध्रुवमाशुस  
 खेथवाहरतिगोहविषाप्रतनेनवै ॥ ७० ॥ सुभसितं  
 ह्यशितं जसदं यदालघुनिहन्ति च मेहगदं तदा ॥ अ  
 हिलतादलयुक्तमिदं सदा सहसखेमहिषीहविषा-  
 थवा ॥ ७१ ॥ शिखरदीप्यकणैश्च सशर्करैर्हरति शू  
 लगदं हि भयानकम् ॥ सहकवोष्णयवानिकया स  
 खे जयति चाशु विवंधगदध्रुवम् ॥ ७२ ॥

भाषानुवादः—जसदभस्म अनुपान—हे मित्र ! मनुष्यके रोग हरनेवाला और  
 सुख करनेवाला जो जसदभस्मका अनुपान उसे मैं अनेक ग्रंथोंके मतको विचार-  
 रके वर्णन करता हूँ तू सुन ॥ ६७ ॥ तज, पत्रज और इलायचीके साथ त्रिदो-  
 षका चायलोंके हिम और खर्जूरके साथ पित्तज्वरका जसदभस्म नाश करता है  
 ॥ ६८ ॥ हे मित्र ! औरभी सुनिगे लवग और अजवान सग शीत ज्वरका तथा  
 जीरा और शकर सग जसदभस्म रक्तातिसार और वमन ( उल्टी ) का शीघ्रही  
 नाश करता है ॥ ६९ ॥ अग्नी ( आग्निमथ ) के रससग मदाग्निका और प्रा-  
 त काठ या सीपुके सग अथवा पुराने गोघृत सग अजन करनेके नेत्ररोगका  
 जसदभस्म नाश करता है ॥ ७० ॥ हे मित्र ! तांगुल ( नागरबेलके पान ) सग  
 मयदा भस्मके प्रीमग सेवन करनेसे जसदभस्म शीघ्रही प्रमेह ( परमा ) का  
 नाश करता है ॥ ७१ ॥ शर्करासहित लवग अजवान और जीरे साथ भयानक  
 शूट तथा अजवान और कुल उष्णपानी सग त्रिदोरोग ( मलरोग ) रक्तातिसार  
 कर्णी ) का जसदभस्म नाश करता है ॥ ७२ ॥

अथ नागानुपानानि ।

मृतं नागं वायुं हरति महमायुश्च मितया शिरोरोगं  
 वाहं घ्नन् चिमथनेत्रामयमग्म ॥ प्रलापं सन्तापं

विविधगदतापञ्जयतिवै सखे देयं वैद्यैर्ननुगदग  
णेऽन्येस्वमतिना ॥ ७३ ॥

भाषानु०—अत्र नागभस्मके अनुपान वर्णन करते हैं—मिश्री साथ वातपित्त  
पीडा द्राह अस्त्रि नेत्ररोग प्रलाप सन्ताप और अनेक रोगजन्य पीडाको  
भस्म दूर करता है और हे मित्र ! इनसे व्यतिरिक्त रोगोपर वैद्योने अपनी  
द्वेमे विचारके अनुपानके साथ नागभस्मको देना चाहिये ॥ ७३ ॥

अथ लोहानुपानानि ।

लोहंमृतंसर्वगदेषुदेयंसदासुवैद्यैश्चपलेनसाकम् ।

भाङ्गीमधुव्योषयुतंजयेद्वैकृत्स्नंतथाधातुविकार  
साशु ॥ ७४ ॥ पुनर्नवाक्काथयुतश्चपाण्डुमेहंनिशा-

श्वौद्रयुतंजयेद्वै ॥ कणामधुभ्यामथवानराणांशै-  
लेययुक्तंननुसूत्रकृच्छम् ॥ ७५ ॥ नूनंकफगंधर

सेन्द्रमाक्षिकैस्सार्द्धचतुर्जातिसितान्वितंजयेत् ॥

वैरक्तपित्तंमृतलोहमाशुकंकुर्यात्पुनर्भूपयसात-  
थावलम् ॥ ७६ ॥ द्राक्षाकणासिंहकमाक्षिकैः

कृताश्वासंजयेद्वैगुटिकासुखेधृता ॥ पारावतस्या

धमृतस्यसेवनान्मर्त्योभवेच्चास्यहीनविग्रहः ॥

॥ ७७ ॥ जसदानुपानादारभ्यलोहानुपानपर्य

न्तंसत्कृतिरियंक्षेयाऽनेकायुर्वेदीयग्रंथाशयात् ॥

भाषा०—अत्र लोहभस्मके अनुपान वर्ण करते हैं—वैद्योने लोहभस्मको सब  
रोगोके समस्त सम्भार शुद्ध पारे सग अधवा पारदभस्म सग सदा देना  
चाहिये और भारगी—महत—व्योष ( सोंठ—मिरच—पीपल ) इन सहित लोहभस्म  
समस्त धातुविकारको दूर करता है ॥ ७४ ॥ पुनर्नवा ( साठी ) के छाथ सग  
पारको दण्डी और सान सग अधवा पीपल और सहन सग प्रमेहको और

शिलाजीत सग मूत्रकृच्छ्रको लोहभस्म दूर करताहै ॥ ७५ ॥ शुद्ध गधक शुद्ध पारा और सहत सग कफका तज-पत्रज-इलायची-नागकेशर और मिश्री सग लोहभस्म रक्तपित्तका नाश करता है और साँठी ( पुनर्नवा ) के चूर्णयुक्त दूध सग बल-वीर्यकी वृद्धि करताहै ॥ ७६ ॥ दाख ( मनुका ) पीपल अरुणा और सहत सग लोहभस्मकी गोली बनाकर पुखमें रखनेसे सब प्रकारका श्वास दूर होजाताहै और सर्वदा ताबूलादियुक्तानुपान सग लोहभस्मके सेवनसे मनुष्य रोगरहित आरोग्यसहित होजाताहै ॥ ७७ ॥ जसदभस्मके अनुपानसे लेकर लोहभस्मानुपानतक ये सब श्लोक मैंने अनेक वैद्यक ग्रन्थानुसार बनायेहैं ॥

अथ स्वर्णमाक्षिकानुपानानि ।

अनुपानं वराव्योषं तीक्ष्णं साज्यं हि माक्षिकम् ॥ ७८ ॥

भाषानुवादः—अत्र स्वर्णमाक्षिकके अनुपान वर्णन करतेहैं—त्रिफला ( हर्द—बहेडा—आमला ) व्योष ( सोंठ—मिरच—पीपल ) केवल काली मिरच मक्खन और सहत ये सोनामक्खीके अनुपान हैं अर्थात् किसी रोगपर सोनामक्खी को देना हो तो उक्तवस्तुओंके साथ दे ॥ ७८ ॥

अथ रौप्यमाक्षिकानुपानानि ।

लीढो व्योमवरा न्वितो विमलको युक्तो वृत्तैस्सेवि  
तोहन्याहुर्भगकृज्ज्वराञ्ज्वययुक्तं पाण्डुप्रमेहारु  
चिम् ॥ मृलान्निग्रहणीश्च शूलमतुलं यक्ष्मामयं  
कामलां सर्वान्पित्तमरुद्गदान्किमपरैर्योगैरशेषा  
मयान् ॥ ७९ ॥ विषव्योषवराज्येन विमलः सेवि  
तोयद्दि ॥ भगंदरादिकारोगानृणांगच्छन्ति दु-  
स्तगः ॥ ८० ॥ इति ग्रंथांतरात् ॥

भाषा०—अत्र रौप्यमाक्षिकके अनुपान वर्णन करतेहैं—अधक—त्रिफला—  
और मिश्री मक्खनके साथ सोनामक्खीकी भस्मको गानसे—स्वल्पका नाश

करनेवाली जरा ( बूढ़ापन ) शोथ पांडु-प्रमेह-अरुचि-अर्श ( बवासीर , सग्रहणी-भयकरशूल-राजयक्ष्मा / क्षयी , कामला ( पीलिया ) और सर्प पित्तज तथा वातज रोग दूर होते हैं, इसी प्रकार पृथक् २ अनुपानोंसे रूपायकलीकी भस्म समस्त रोगमात्रोंको दूर करती है ॥ ७९ ॥ तथा सिंगियाविष-त्रिकटु त्रिफला और घीके साथ रूपायकलीकी भस्म सेवन करनेसे भगदर आदि असाध्य रोगभी दूर होय ॥ ८० ॥ ऐसा ग्रन्थान्तरमें उक्त अनुपान लिखे हे ॥

अथ तुत्थानुपानानि ।

घृतेन कण्डूविषकुष्ठरोगास्तांबूलयोगेन कफं तथा  
ग्रम् ॥ कृमिकृमिघ्नेन च तुत्थभस्मक्षौद्रांजितं नेत्र  
गदंजयेद्वै ॥ ८१ ॥ मत्कृतिरियम् ॥

भाषानुवादः—गोघृत या माखनसग-कडू ( खाज ) विष और कुष्ठोको तांबूल सग कफको वायविडग साथ कृमिको तुत्थभस्म दूर करता है और महत मग नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्ररोगोंका नाश करता है ॥ ८१ ॥ यह श्लोक वैद्यक ग्रन्थाशयानुसार मेरा बनाया हुआ है ॥

अथ शिलाजत्वनुपानानि ।

एलापिप्पलिसंयुक्तं मासमात्रं तु भक्षयेत् ॥ सूत्र  
कृच्छ्रं सूत्ररोधं हन्ति मेहं तथा क्षयम् ॥ ८२ ॥ स  
र्वानुपानैः सर्वत्र रोगेषु विनियोजिते ॥ जयत्यभ्या  
सतो नृनं तांस्तान् रोगान्न संशयः ॥ ८३ ॥

भाषानुवाद—अत्र शिलाजीतका अनुपान कहते हैं—छोटी इलायची और पीपलके सग एकमहीने पर्यन्त शिलाजीतका सेवन करनेसे सूत्रकृच्छ्र, सूत्ररोध, प्रमेह और क्षय, ये सब दूर होय ॥ ८२ ॥ और इनसे व्यतिरिक्त रोगोंपर विचारपूर्वक पृथक् २ अनुपान मग शिलाजीतका सेवन करनेसे रोगमात्र दूर होता होजाता है ॥ ८३ ॥ ऐसा ग्रन्थान्तरमें लिखा है

१. ए. यको श्लोकमें—नीला तथा तृतिपानी कहते हैं ।

अथ पारदभस्मानुपानानि ।

पिप्पलीमारिचैः शृंठीभारंगीमधुनासह॥कासश्वा  
सप्रशमनः शूलस्यचविनाशनः ॥ ८४ ॥ हरिद्रा  
शर्करासार्द्धरुधिरस्यविकारनुत् ॥ त्र्यूपणंत्रिफला  
वासा कामलापाण्डुरोगजित् ॥ ८५ ॥ शिलाज-  
तुतथैलाचसितोपलसमन्वितः ॥ सूत्रकृच्छ्रेप्रश-  
स्तोयंसत्यंनागार्जुनोदितम् ॥ ८६ ॥ लवंगंकुसुमंप-  
त्रीहिङ्गुलंचाकलंकरा॥पिप्पलीविजयाचैवसमान्ये  
तानिकारयेत् ॥ ८७ ॥ कर्पूरादहिफेनानिनागाद्वा-  
गार्द्धकंक्षिपेत् ॥ सर्वमेकत्रसंमर्द्यधातुवृद्धौप्रदाप-  
येत् ॥ ८८ ॥ सौवर्चलंलवंगंचभूनिंवंचहरीतकी ॥  
अस्यानुपानयोगेन सर्वज्वरविनाशनः ॥ ८९ ॥  
तथारेचकरःप्रोक्तःसौवर्चलफलत्रिकम् ॥ लवंगंकु-  
सुमंचैवदरदेनचसंयुतम् ॥ ९० ॥ तास्वूलेनसमंभक्ष्यं  
धातुवृद्धिकरंपरम् ॥ विदारीचूर्णयोगेनधातुवृद्धिक-  
रोमतः ॥ ९१ ॥ विजयादीप्यसंयुक्तोवमनस्यवि-  
कारनुत् ॥ सौवर्चलंहरिद्राचविजयादीप्यकंतथा  
॥ ९२ ॥ अनेनोदरपीडांचसद्योत्पन्नांविनाशयेत् ॥  
चतुर्वल्लीपलाशस्यबीजंचद्विगुणंगुडः ॥ ९३ ॥ अस्या-  
नुपानयोगेनकृमिदोषविनाशनः ॥ अहिफेनलवंगं  
चदरदंविजयातथा ॥ ९४ ॥ अस्यानुपानतः सद्यः  
सर्वातीसारनाशनः ॥ सौवर्चलेनदीप्येनअग्निमा

द्यपरः परः ॥ ९५ ॥ क्षुब्धो धजनकश्चैव सिद्धनागेश्वरो-  
दितमागुडूचसित्त्वयोगेन सर्वपुष्टिकरः स्मृतः ॥ ९६ ॥

भाषानुवादः—अब पारेकी भस्मके अनुपान वर्णन करते हैं पीपल, कालीभि-  
रुच, सोठ, भारगी, और सहतसग, कास, श्वास, और गूल रोगका पारदभस्म  
नाश करता है ॥ ८४ ॥ हल्दी और शक्करसग रुधिरविकारको, हर्द, बहेडा, आवला,  
सोठ, मिरच पीपल और अडूसेके साथ कामला और पाडुरोगको ॥ ८५ ॥  
शिलाजीत, छोटी इलायची, और मिश्रीसग मूत्रकृच्छ्रको पारदभस्म दूर  
करता है ऐसा नागार्जुनजीने कहा है ॥ ८६ ॥ लवंग, केशर, तालीसपत्र, शुद्ध  
हिगुल अकलकरा, पीपल ये सब समान लेवे ॥ ८७ ॥ तथा कपूर, अफीम  
आधाभाग लेवे नागेश्वर १ भाग लेवे और इन सबके चूर्णसग पारद भस्म सेवन  
करे तो वातुवृद्धि होय ॥ ८८ ॥ सौचलनोन, लोंग, चिरायता, हर्द इनके चूर्ण  
सग सब प्यरका नाश करता है ॥ ८९ ॥ और सौचलनोन, त्रिफला, लोंग, केशर  
और शुद्ध सिंगरफ इनके सग सेवनसे पारदभस्म दस्त लाता है ॥ ९० ॥ ताबूलसग  
अथवा चिदारीकदके चूर्णसग पारदभस्म धातुवृद्धि करता है ॥ ९१ ॥ भाग और  
अजवानसग वमन ( उलटी ) को दूर करता है, सौचलनोन हल्दी, भाग, और  
अजवानसग ॥ ९२ ॥ पारदभस्म उदरपीडाको शीघ्र नाश करता है, चारवह—  
( १२ गुंजा ) पत्रासके बीज उनसे दूना गुड ॥ ९३ ॥ इस अनुपानसे  
पारदभस्मका सेवन करे तो कुमिरोग दूर होय, अफीम, लोंग, शुद्ध सिंगरफ,  
और भाग ॥ ९४ ॥ इस अनुपानके साथ सेवन करनेसे पारद भस्म शीघ्रही  
नमकत अतिमारोका नाश करता है और सौचलनोंन और अजवान सग  
गन्धियों दूर करके ॥ ९५ ॥ क्षुधा बढ़ाता तथा उत्पन्न करता है, ऐसा  
सिद्धनागेश्वरजीने कहा है और गुरच ( गिलेय ) के सत्त्व सग सेवनकरनेसे  
पारदभस्म पुष्टता करता है ॥ ९६ ॥

पित्तेश्वरयामलेन सहसा गते च कृष्णासमंदव्या-

च्छेष्माणि शृंगवेरसाहितं जंवीरनीरंज्वरे ॥ रक्तौत्थे

मधुनाप्रवाहरुधिरस्यान्मेघनादोदकेदद्याच्चाथकृ  
तातिसारविघ्नैरोगान्तर ॥ १५ ॥

भाषानुवादः—पित्तरागमें खाडक आर आंवड़ेके चूर्णतग वातरागमें पीपल  
के सग कफरोगमें अदरककेसग ज्वरमें ज्वरीकी रससग, रुधिरजन्य विकारमें  
सहतसग, रक्तस्राव तथा प्रवाहिका और अतिसारमें चीलाईके रससग पारेकी  
भस्मको देना चाहिये ॥ ९७ ॥

अथ रससिन्दूरानुपानानि ।

वातेसक्षौद्रपिप्पल्यापिचकफरुजिञ्चूषणंसाग्निचू  
र्णपित्तेशैलासितेन्दुव्रणवतिचवरागुग्गुलुश्चारुव  
द्धः ॥ चातुर्जातेनपुष्टौहरनयनफलाशाल्मलीपु-  
ष्पवृन्तंकिंवाकान्ताललाटाभरणरसपतेस्स्यादनू  
पानमेतत् ॥ ९८ ॥

भाषानुवादः—अव रससिंदूरके अनुपान वर्णन करतेहैं वातरोगमें पीपल औ  
सहतसग, कफरोगमें त्रिकटु ( सोंठ—मिरच—पीपल ) और चित्रकके चूर्णस  
पित्तरोगमें, शिलाजित, मिश्री और कपूरसग व्रणरोगमें त्रिफला और गुग्गुलुस  
और पुष्टताके लिये, चातुर्जातके अथवा त्रिफला और सेमरकद ( शाल्मलीमूल  
के सग रससिंदूरको देवे ॥ ९८ ॥

अथ रसकर्पूरानुपानानि ।

वल्ल्वल्लार्द्धमानेनजीर्णेगुडसमंददेत् ॥ यथोचिता-  
नुपानेनसर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ ९९ ॥ दुग्धोदनंतुप  
थ्यंदेयंचास्मिंश्चताम्बूलम् ॥ हरतिसमस्तान् रोगा  
न्कर्पूरारुख्योरसोनृणाम् ॥ १०० ॥

भाषानुवादः—अव रसकर्पूरके अनुपान वर्णन करतेहैं पुराने गुडके स  
रत्ती अथवा टेढ रत्ती प्रमाण रसकर्पूर देवे अथवा रोगानुसार अनुपान वि

॥ ९९ ॥ और ऊपरसे पानका बीटा खिलावे तथा दुग्ध,  
गवळ, खानेको पथ्य देवे तो समस्त रोगमात्र दूर होय ॥ १०० ॥

अथ गंधकानुपानानि ।

इत्थंविशुद्धस्त्रिफलाज्यभृंगमध्वान्वितश्शाणमि-  
तोवलीढः ॥ गृध्राक्षितुल्यंकुरुतेक्षियुग्मंकरोतिरो-  
गोज्झितदीर्घमायुः[॥१००॥]शुद्धंगन्धंनिष्कमात्रं  
सदुग्धैस्सेव्यंमासंशौर्यवीर्यप्रवृद्धयै ॥ षणमासा-  
त्स्यात्सर्वरोगप्रणाशो दिव्यादृष्टिं दीर्घमायुस्स्व-  
रूपम् ॥१०१॥ मोचाफलेनत्वग्दोषंचित्रकेणमहा-  
बलम् ॥आढरूपकपायेणक्षयकासाञ्जयेद्भृशम् ॥  
॥ १०२॥मन्दानलत्वंजयतित्रिफलाक्वाथसंयुतः॥  
ऊर्ध्वगान्सकलान्रोगान्हन्तिशीघ्रंसुगंधकः॥१०३॥  
सर्वमिदंग्रंथांतराल्लिखितम् ॥

भाषानुवाद —अब गंधकके अनुपान वर्णन करतेहैं त्रिफला, वृत और  
गरके रससग ४ मासे शुद्ध आबलासार गंधक सेवन करनेसे गृध्र ( गीव-  
प्रिका राजा- गुग्गु ) के समान दूरतककी वस्तु देखनेवाली दृष्टि ( नेत्र ) होवे  
और वह पुष्प रंगरहित दीर्घायु होय [ ॥ १०० ॥ ] तथा दूधके सग निष्क  
४ मासे ) मात्र शुद्ध गंधकका एक महीने पर्यन्त सेवन करनेसे शूरता और  
वीर्य वृद्धि होय इसी प्रकार ६ मास पर्यन्त खानेसे सब रोगोंका नाश,  
दृष्टि और आयु तथा स्वरूपकी वृद्धि होय ॥ १०१ ॥ मोचा फलके  
पथ खानेसे त्वचाके दोषोंको चित्रसग निर्वलताको अङ्गुलके छाथमग कास-  
तको ॥ १०२ ॥ त्रिफलाके काटेसग मदाशिको और देहके ऊर्ध्वभागगत-  
गोको शुभ्र गंधक शीघ्र ही दूर करताहै ॥ १०३ ॥ ये सब अनुपान ग्रंथांतरमे  
होने यदा लिखेहैं



सप्तधातुशोधनम् १ ।

स्वर्णतारारताभ्राणांपत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् ॥

निषिञ्चेत्तप्ततप्तानितैलेतकेचकांजिके ॥ ११ ॥

गोमूत्रेचकुलत्थानांकषायेचत्रिधात्रिधा ॥

एवंस्वर्णादिलोहानां विशुद्धिस्संप्रजायते ॥ १२ ॥

शार्ङ्ग० सं० खं० २ अ० ११ ।

भाषानुवादः—धातुशोधन १ सुवर्णादि धातुओंके पत्रोंको अग्निमें तपातपा कर तेल, छाछ, काजी, गोमूत्र, और कुलथीका काढा इन प्रत्येकमें क्रमशः तीन तीन बार बुझाओ तो समस्त धातु शुद्ध हो विशेषतः सातधातुओंमेंसे १ रागा २ सीसा और ३ जस्ता इन तीनों को गला गलाके तैल आदि उक्त पात्रों पदार्थोंमें बुझाना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह शुद्धि शार्ङ्गधरके २ रे खटकी ११ वीं अध्यायमें लिखी है ।

उपधातुशोधनम् २ ।

१ सुवर्णमाक्षिकशो०—मातुलुंगद्रवैर्वाथजम्बीरस्यद्रवैः

पचेत् ॥ चालयेल्लोहजेपात्रेयावत्पात्रं सुलोहितम् ॥

भवेत्तप्तस्तुसंशुद्धिस्स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ १३ ॥

२ रौप्यमाक्षिकशो०—ककोटीमेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दि-

नम् ॥ भावयेदातपेतीत्रेविमलाशुद्धयतिध्रुवम् ॥ १४ ॥

३ तुत्थशो०—विष्टयामर्दयेत्तुत्थंमाज्जारिककपोतयोः ॥

दशांशं टंकणं दत्त्वापचेन्मृदुपुटेततः ॥

पुटं दध्नापुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्ध्यते ॥ १५ ॥

४-५ कांस्यरीतिशो०—शोधनं कांस्यरीत्योश्च धातुशुद्धि-

समं भवेत् ॥ १६ ॥

६ सिंदूरशो०--दुग्धासुलयोगतस्तस्यविशुद्धिर्गदितावु  
धैः ॥ १७ ॥ भा० प्र० पू० खं० भा० ॥

७ शिलाजतुशोधनम्--शिलाजतुसमानीयग्रीष्मतप्तशि  
लाच्युतम् ॥ गोदुग्धैस्त्रिफलाकाथैर्भृङ्गद्रावैश्चमर्दये  
त् ॥ आतपेदिनमेकैकंतच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ॥ १८ ॥

उपधातुशोधनम् २ ।

१ सोनामक्खी शो०--भाषानुवादः--विजोरे नीबूके रसमें अथवा जवां  
रीके रसमें सोनामक्खीको डालकर लोहेकी कड़ाहीमें पकाओ जब रस जलकर  
कड़ाही लाल होजावे तब उतारके शीतल होजानेपर निकालो सोनामक्खी  
शुद्ध होजावेगी ॥ १३ ॥

२ रूपामक्खी शो०--रूपामक्खीको, ककोडा, मेंढासिंगी और जवारी  
इन प्रत्येकके रसमें एक दो दिन घोट घोटकर सूर्यकी तीक्ष्ण तापमें रक्खो तो  
रूपामक्खी शुद्ध होगी ॥ १४ ॥

३ नीलाथोथा शो०--बिल्ली और कबूतरकी बीठ (बिष्टा) में नीलेथोथेको  
गुठ करे पश्चात् उसमें उसीका दशांश सुहागा मिलाकर शरावसपुट करे अनंतर  
जगड़ी गोबरकी हलकी आच देवे पश्चात् निकालके दहीका पुट देकर पुन  
आच दे इसप्रकार पुन महतका पुट देकर आच देवे तो नीलाथोथा शुद्ध  
हो ॥ १५ ॥

रससंस्काराः ३ ।

अष्टादशसंस्काराऽनविंशतिकाः कचित् ॥

संप्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः कचिन्मताः ॥ १९ ॥

१ तत्राष्टादशसंस्काराः—स्यात्स्वेदनं तदनुमर्दनमूर्च्छं

न च स्यादुत्थितिः पतनरोधनियामनानि ॥ संदी

पनंगगनभक्षणमानसत्र सञ्चारणं तदनुगर्भगति

र्तुतिश्च ॥ २० ॥ बाह्यद्रुतिस्सूतकजारणास्याद्वा

सस्तथासारणकर्मपश्चात् ॥ संक्रामणं वेधविधि

शरीरयोगस्तथाष्टादशधातुकर्म ॥ २१ ॥

२-३ अथैकोनविंशतिसंस्कारास्तदन्तरगताश्चाष्टौ

स्वेदनमर्दनमूर्च्छनोत्थापनपातनबोधननियम

नसंदीपनानुवासनगगनादिग्रासप्रमाणचारण

गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतियोगजारणरंजनसारणक्रामण

वेधनभक्षणाख्या ऊनविंशतिसंस्कारास्सूतसि

द्धिदाभवन्ति दीपनान्ता अष्टौसंस्कारावादेहासि

द्धिदाभवन्ति ॥ २२ ॥ अं० त० ।

भाषानुवादः—पारेके कहीं १८ अठारह, कहीं १९ उन्नीस और कहीं ८  
आठ संस्कार माने हैं ॥ १९ ॥ पारेके १८—१९—८—संस्कारोंका क्रम—तैसे १  
स्वेदन २ मर्दन ३ मूर्च्छन ४ उत्थापन ५ पातन ६ बोधन ( बोधन ) ७  
नियमन ८ संदीपन ९ गगनभक्षण १० सञ्चारण ११ गर्भगति १२ गर्भ-  
द्रुति १३ बाह्यद्रुति १४ सूतकजारण १५ ग्रास १६ सारणकर्म १७ संक्रा-  
मणवेधविधि और १८ शरीरयोग ये पारेके अठारह संस्कार हैं, इनमें एक  
भक्षणाख्य संस्कार योजित करनेसे १९ उन्नीस और १ छे स्वेदनसे ८

सदीपन पर्यन्तके आठभी सस्कार माने हैं. ये ८ आठ सस्कार अथवा समस्त सस्कार होनेसे पारा शुद्ध होता है ॥ २०-२१-२२ ॥

रसशोधनम् ३ ।

अथवाहिङ्गुलात्सूतंग्राहयेत्तन्निगद्यते ॥ जम्बीर  
निंबुनीरेणमर्दितोहिङ्गुलोदिनम् ॥ २३ ॥ ऊर्ध्वपा  
तनयंत्रेणग्राह्यःस्यान्निर्मलोरसः ॥ कंचुकैर्नागवं  
गाद्यैर्निर्मुक्तोरसकर्मणि ॥ विनाकर्मपृष्ठकेनैव  
सूतोऽयंसर्वकर्मकृत् ॥ २४ ॥ अ० त० ।

भाषानुवादः—सूचना—यद्यपि पूर्वोक्त सस्कारोसे पारा शुद्ध होताहै ? रस-  
शोधन प्रकार—तथापि उन सस्कारोंको प्रथविस्तारभयसे हम यहां न लिखकर  
सा ग्रहण प्रकारसेही पारेका शोधन दर्शाते हैं कि जिससे थोड़े परिश्रमके साथ  
उस अष्ट वा अष्टादश सस्कार शुद्ध पारेके समानही शुद्ध और गुणप्रद पारा  
हो जाये. हीगुट्ट ( सिंगरफ ) को जंबीरी अथवा नींबूक रससे एकदिनभर  
गाड़ कर पश्चात् टेमरूयत्रद्वारा उडाकर उससे निकले हुए पारेको ग्रहण करे,  
यह पारा बिना आठ सस्कारकेही सातो कचुकी और नागयग आदि दोग  
रहित तथा निर्मल हो जाता है इसे समस्त कायोंमे ग्रहण करना योग्यहै ऐसा  
अथतरमे लिखाहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

अन्यच्च—निम्बूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वायाममात्रकम् ॥ पि  
द्वादरदमृध्वंच पातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ततश्शुद्ध  
रसं तस्मान्नीत्वाकार्येषुयोजयेत् ॥ २५ ॥ शार्ङ्ग०  
अ० अ० ११ ॥

अन्यच्च—कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्वृ  
हतीविमिश्रितैः ॥ फलत्रिकेणापिविमर्दितोरसो  
दिनत्रयंसर्वमलैर्विमुच्यते ॥ २६ ॥ भा० प्र०  
पू० ख० २ भा० ॥

दूसरा प्रकार—शार्ङ्गधरमे ऐसाभी लिखा है कि शिगरफको नीबूके अथवा  
नीबूके पत्तोंके रससे १ एक प्रहर पर्यन्त खल करके डमरूयत्रसे २ तथा ३  
प्रहरकी आन्न देके ठडा लेवे और उस शिगरफसे उडकर निकले हुए शुद्ध  
पारेको लेकर सर्व कार्योंमें योजित करे ॥ २५ ॥

३ प्रकार—कुमारिका ( गवारपाठा ) चित्रक, लालसरसों और भट्कटैया  
इनके काथसे और त्रिफलासे तीनदिनपर्यन्त पारेको खल करनेसे समस्त मल  
रहित शुद्ध पारा हो जाता है ऐसा भावप्रकाशमें लिखा है ॥ २६ ॥

उपरसशोधनम् ।

१ तत्र गंधकशोधनम्—लोहपात्रेविनिःक्षिप्यघृतमग्नौ  
प्रतापयेत् ॥ तत्तेघृतेतत्समानंक्षिपेद्गन्धकजंरजः ॥

॥ २७ ॥ विद्रुतंगन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिःक्षिपेत् ॥

यथावस्त्राद्विनिःसृत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत् ॥ एवं  
सगन्धकं शुद्धं सर्वकम्भोचितो भवेत् ॥ २८ ॥

२ हिंगुलशो०—मेघीक्षीरेण दरदमम्लवर्गेऽश्वभावितम् ॥  
सप्तवारान्प्रलेपेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ २९ ॥

३ अभ्रकशो०—कृष्णाभ्रकंधमेद्रहौ ततः क्षीरे विनिःक्षि  
पेत् ॥ भिन्नपत्रतुतकृत्वा तण्डुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥  
भावयेदष्टयामतदेवमभ्रं विशुद्ध्यति ॥ ३० ॥

४ हरितालशो०—तालकंकणशः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके

पचेत् ॥ दोलायन्त्रेणयामैकंततः कूष्माण्डजद्रवैः ॥

॥ ३१ ॥ तिलतैलपचेद्यामंयामश्चलिफलाजले ॥

एवंयन्त्रेचतुर्यामंपकंशुध्यतितालकम् ॥ ३२ ॥

५ मनश्शिलशो०—पचेत्त्रयहमजामूत्रे दोलायन्त्रेमनश्शिलाम् ॥ भावयेत्सप्तधापित्तरजायाःसापिशुध्यति ॥ ३३ ॥ भा० प्र० ॥

अन्यच्च—अगस्तिपत्रतोयनभावितंसप्तवारकम् ॥

शृंगवेररसैर्वापिशुध्यतिमनश्शिला ॥ ३४ ॥ ग्रं. त. ।

६ खर्परशो०—नरमूत्रेचगोमूत्रेसप्ताहंरसकंपचेत् ॥ दोलायन्त्रेणशुद्धस्स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ३५ ॥

७ कंकुठादीनांशोधनम्—कंकुष्ठं गैरिकं शंखः कासीसं दृढाणंतथा ॥ नीलाञ्जनंशुक्तिभेदाःक्षुल्लकास्सवराटकाः ॥ ३६ ॥ जंवीरवारिणास्विन्नाः क्षालिताः क्रोष्णवारिणा ॥ गृद्धिमायान्त्यमीयोज्याभिषग्भिर्योगनिद्रये ॥ ३७ ॥ भा० प्र० ।

८ मत्तोंषागानांशोधनम्—त्रिशोरलवणेदेयमम्लैर्नगैर्निवापचेत् ॥ तदाचोपरसांशुद्धाजायन्तेडोक्वजिनाः ॥ ३८ ॥ ग्रं० त० ।

डाले ॥ २७ ॥ जब वह गन्धक घाम धिक्क जावे तब एक पात्रमे दूध भरके उस पात्रके मुहपर महनि कपडा बाधकर उसमे वह पिघला हुआ गन्धक डाल दे जिससे गन्धक छानकर दूधमें गिरे और जो कुछ ककर मट्टीहो सो सब बन्दमे रह जावे फिर वह गन्धक दूधमे गिरकर शीतल होजावे तब उसे लेवे इस प्रकार गन्धक शुद्ध होता है ॥ २८ ॥

२ हिंगुलशो०—हिंगुल ( शिगरफ ) को खलमे टालकर ७ सात पुट भेडीके दूध और ७ पुट नीबूके रसकी देवे तो निश्चय शुद्ध हो ॥ २९ ॥

३ अभ्रक शो०—काले अभ्रकको अग्निमे तपाकर गऊके दूधमे बुझाओ फिर चाँलाईके रसमे अथवा चावलके पानीमे और इमलीकी खटाईमे आठ प्रहर ( एकदिनरात ) भिगोये रखो तो अभ्रक शुद्ध हो ॥ ३० ॥

४ हरतालशो०—हरतालके छोटे २ टुकड़े करके १ प्रहर काजीमे १ प्रहर भूर कुम्हड़ेके रसमें १ प्रहर तेलमे और १ प्रहर त्रिफलाके काथमे दोलायत्रसे आच देओ तो हरताल शुद्ध हो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

५ मनशिलशो०—मनशिलको बकरीके मूत्रसे दोलायत्रमें ३ दिन औटावे पश्चात् खलमे डालकर बकरीके पित्तकी ७ भावना देवे तो मनशिल शुद्ध हो, ये सब शोधन भावप्रकाशमें लिखे हैं ॥ ३३ ॥

दूसरा प्रकार—मनशिलको अगास्तिपत्र रसकी अथवा अदरकके रसकी ७ भावना देवे तो मनशिल शुद्धहो ऐसा ग्रन्थतरेमें लिखाहै ॥ ३४ ॥

६ खपरियाशो०—खपरियाको मनुष्यके मूत्रमें अथवा गोमूत्रमे दोलायत्रमे ७ सात दिन पकाओ तो शुद्ध हो ॥ ३५ ॥

७ सुरदासंग आदि ८ उपरसोका शोधन— १ सुरदासंग २ गैरू ३ शय ४ हीराकसीम ५ सुरागा ६ कालासुरमा और ७ सौंष भेदरूप जो योगा—कोटी इ पादि ॥ ३६ ॥ इनको ज्वारीके रसमे शोधन करके गरम

१ दोलायत्र उसे कहते हैं कि जिस पात्रमें काजी आदि उस पात्रके मुखसे कुछ वगभरके उसमें जिस औषधको शुद्ध करना हो उसे भोजपत्रमें लपेट तिहरे कपटन पीटली रूपसे बांध उसे एक लकड़ीमे डोरेसे बाधकर बीचोंबीच अधर एका देवे पश्चात् उस पानकी भट्टी या चूल्हेपर चढाके लिखेप्रमाण आच दे ॥

पानाने थोडालो तो ये सब - उपरस शुद्ध हो जावेंगे ऐसा भा.प्र.हाशमे लि-  
या है ॥ ३७ ॥

८ शेष उपरसोका अथवा सर्वोपरसोका सक्षिप्त शोधन--सब उपरसो-  
को जवाखार, सजीखार, सुहागा, नोन और अम्लवर्ग इन प्रत्येकमें तीन ३  
बार पचावे तो समस्त उपरस दोषरहित शुद्ध होवे ऐसा प्रथातरमें लिखा है ॥ ३८ ॥

रत्नशोधनम् ।

तत्रादौवज्रस्यशो०-कुलत्थकोद्रवकाथेदोलायन्त्रोवि-  
पाचयेत् ॥ व्याघ्रीकन्दगतंवज्रं त्रिदिनंतद्विशु-  
द्ध्यति ॥ ३९ ॥

अवशिष्टरत्नानांशो०-वज्रवत्सर्वरत्नानिशोधयेन्मा-  
रयेत्तथा ॥ ४० ॥ भा० प्र० ।

विषशोधनम्-कृत्वाचणकसंख्यानंगोमूत्रैर्भावयेत्पु-  
नरम् ॥ समटङ्कणसंपिष्टंमृतमित्युच्यतेविष-  
म् ॥ ४१ ॥ रसे० सा० ।

उपविषशोधनम्-पञ्चगव्येषुशुद्धानिदेयान्युपविषा-  
णिच ॥ विषाभावप्रयोगेषुगुणस्तुविषसम्भवः॥४२॥

जैपालशो०-नविषंविषमित्याहुर्जैपालोविषमुच्यते॥  
जोधितश्चविरेकेषुचमत्कृतिकरःपरः ॥ ४३ ॥ जै  
पालगहितंत्वगंकुररसेर्जाभिर्मलेमाहिषे निःक्षिप्तं  
व्यहन्मुष्णतोयविमलंषण्डेसवासोदितम् ॥ लिप्तं  
नूतनत्वपरेषुविगतलोहोरजःसंनिभो निम्बवृक्षां  
वृत्तिनाविनश्चबहुशङ्खद्रोगुणाच्छोभवेत् ॥४४॥  
घे. त. ।



**भाषानुवादः—**अब रत्नोका शोधन लिखते हैं १ हीराशो०—हीरेको छोटा कटियालीके मूलमें रखकर कुलधी और कोदोके काढेसे दोलायत्रमे ३ दिन पर्यन्त पकावे तो हीरा शुद्ध हो ॥ ३९ ॥

**शेषरत्नोंका शो०—**शेषरत्नोका शोधन और मारण हीरेके समान ही जानो ॥ ४० ॥ ऐसा भाव प्रकाशमे लिखा है ।

**विषोकाशो०—**जिस विषका शोधन करना हो उसके छोटे २ चनेके समान टुकड़े करके पश्चात् गोमूत्रसे दोलायत्रमे ३ दिनपर्यन्त आच देवे और फिर उसके समान सुहागा मिलाकर खल्कर लेवे तो वह विष निर्विष ( शुद्ध ) होजाता है ऐसा रसेन्द्रसारसंग्रहमे लिखा है ॥ ४१ ॥

**उपविषशो०—**समस्त उपविषोको, दूध, दही, घृत, गोमूत्र और गोबरमें शोधन करके जहा विष न मिले वहा शुद्ध उपविषोको योजित करना चाहिये ॥ ४२ ॥

**जमालगोटेका शो०—**पटित ( सत् असत् विचार करनेवाले, अथ जैसा विषको विष नहीं समझते वसा जमालगोटेको विष ( जहर ) मानते हैं और यही जमालगोटा शुद्ध होनेपर विरचन ( दस्त—जुलाव ) में चमत्कार प्रदर्शक अतिश्रेष्ठ होजाता है ॥ ४३ ॥ जमालगोटेके छिलकोंको दूर करके उसके भीतर एक महीनपत्ती ( जो जमालगोटेकी जीभ ) होती है उसे निकालडाले पश्चात् एक बख्त्रमे बांधके ३ दिनतक भैसके गोबरमें दवायरक्खे, फिर निकालकर गरम-पानीसे धोडाले फिर दूसरे अच्छे बख्त्रमें बांधके युक्तिसे खल करे कि जिससे उसका तेल २ बख्त्र शोपले, पश्चात् नवीन खपरपर उसका लेपदेवे, जब तेल मात्र उसमें न रहकर बूलीके समान वह होजावे तब उसे नींबूके रसकी भाजना देवे, तो जमालगोटा शुद्ध हो ये सब प्रयातरमें लिखा है ॥ ४४ ॥

अथ स्वर्णादीना मारणम् ।

१ सुवर्णमा०—स्वर्णस्य द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत् ॥

तद्गोलकसमं गंधं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ ४५ ॥

गोलकं च ततोरुद्धा शरावं दृढसंपुटे ॥ त्रिंशद्

नोपलेईयात्पुटान्येवं चतुर्दश ॥ ४६ ॥ निरुत्थं

जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ ४७ ॥

पानांगे थोडा लो तो ये सत्र - उपरस शुद्ध हो जावेंगे ऐसा मातृप्रसाशमें लिखा है ॥ ३७ ॥

८ शेष उपरसोका अथवा सवोपरसोका संक्षिप्त शोधन--सत्र उपरसोको जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, नोन और अम्लवर्ग इन प्रत्येकमें तीन बार पचावे तो समस्त उपरस दोषरहित शुद्ध होवें ऐसा ग्रन्थातरमें लिखा है ॥ ३८ ॥

रत्नशोधनम् ।

तत्रादौ वज्रस्य शो०-कुलत्थकोद्रवकाथेदोलायन्त्रे विपाचयेत् ॥ व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनं तद्विशुद्धयति ॥ ३९ ॥

अवशिष्टरत्नानां शो०-वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मा रयेत्तथा ॥ ४० ॥ भा० प्र० ।

विषशोधनम्-कृत्वा चणकसंख्यानं गोमूलैर्भाविष्येत्पुनरहम् ॥ समटङ्कणसंपिष्टं मृतमित्युच्यते विषम् ॥ ४१ ॥ रसे० सा० ।

उपविषशोधनम्-पञ्चगव्येषु शुद्धानि देयान्युपविषाणि च ॥ विषाभावप्रयोगेषु गुणस्तु विषसम्भवः ॥ ४२ ॥

जैपालशो०-न विषं विषमित्याहुर्जैपालो विषमुच्यते ॥ शोधितश्च विरेकेषु च मत्कृतिकरः परः ॥ ४३ ॥ जैपालं रहितं त्वगंकुररसैर्जाभिर्मले माहिषे निःक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् ॥ लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहोरजःसंनिभो निम्बवृक्षां वृषिभाविषश्च बहुशश्शुद्धो गुणाच्छो भवेत् ॥ ४४ ॥  
ग्रं. त. ।

**भाषानुवादः—**अब रत्नोका शोधन लिखते हैं १ हीराशो०—हीरेको छोटी कटियालीके मूलमें रखकर कुल्फी और कोदेके काढेसे दोलायत्रमें ३ दिन पर्यन्त पकावे तो हीरा शुद्ध हो ॥ ३९ ॥

**शेपरत्नोंका शो०—**शेपरत्नोंका शोधन और मारण हीरेके समानही जानो ॥ ४० ॥ ऐसा भाव प्रकाशमें लिखा है ।

**विषोंकाशो०—**जिस विषका शोधन करना हो उसके छोटे २ चनेके समान टुकड़े करके पश्चात् गोमूत्रसे दोलायत्रमें ३ दिनपर्यन्त आच देवे और फिर उसके समान सुहागा मिटाकर खलकर लेंवे तो वह विष निर्विष ( शुद्ध ) होजाता है ऐसा रसैन्द्रसारसग्रहमें लिखा है ॥ ४१ ॥

**उपविषशो०—**समस्त उपविषोको, दूध, दही, घृत, गोमूत्र और गोबरमें शोधन करके जहा विष न मिले वहा शुद्ध उपविषोंको योजित करना चाहिये ॥ ४२ ॥

**जमालगोटेका जो०—**पडित । सत् असत् विचार करनेवाले वगैरे जैसा विषको विष नहीं समझते वसा जमालगोटेको विष ( जहर ) मानते हैं और यही जमालगोटा शुद्ध होनेपर विरचन ( दस्त—जुलाब ) में चमत्कार प्रदर्शक अतिश्रेष्ठ होजाता है ॥ ४३ ॥ जमालगोटेके छिलकोंको दूर करके उसके भीतर एक महीनपत्ती ( जो जमालगोटेकी जीभ ) होती है उसे निकालडाले पश्चात् एक बख्त्रमें बांधके ३ दिनतक भैंसके गोबरमें दवायरक्खे, फिर निकालकर गरम-पानीसे धोडाले फिर दूसरे अच्छे बख्त्रमें बांधके युक्तिसे खल करे कि जिससे उसका तेल २ बख्त्र शोषले, पश्चात् नवीन खपरेपर उसका लेपदेवे, जब तेल मात्र उसमें न रहकर बूलीके समान बह होजावे तब उसे नींबूके रसकी भावना देवे, तो जमालगोटा शुद्धहो ये सब प्रयातरमें लिखा है ॥ ४४ ॥

अथ स्वर्णादीना मारणम् ।

१ सुवर्णमा०—स्वर्णस्यद्विगुणंसूतमम्लेनसहमर्दयेत् ॥

तद्गोलकसमंगंधं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ ४५ ॥

गोलकं च ततोरुद्धा शरावं दृढसंपुटे ॥ त्रिंशद्व

नोपलैर्द्वयात्पुटान्येवचतुर्दश ॥ ४६ ॥ निरुत्थं

जायतेभस्मगन्धोदेयः पुनःपुनः ॥ ४७ ॥

भाषानु०—अब सोनेआदिके मारण ( भस्म करने ) की विधि दर्शातेहैं ।

१ सोनेकी भस्म—शुद्धकिये हुए सोनेसे दुना शुद्ध पारा लेकर दोनो नीबूके रससे खल करके गोला बनावे और उस गोलेके समान शुद्ध गंधकके चुरेको शरावसपुटमे नीचे, ऊपर और गोलेको बीचमें रखे पश्चात् कपडमट्टीसे शरावस पुटको दृढकरके ३० जगली गोवरी ( कड़ों ) की आच देवे, इसप्रकार चौदह पुट ( १४ हवार आच ) देनेसे सोनेकी निरैत्य ( पक ) भस्म होय, पर प्रत्येक आचके साथ गंधक सपुटमे नीचे ऊपर अवश्य रखे ॥ ४९—४६—४७ ॥

२ रौप्यमा०—आगैकंतालकंमर्यायाभस्मम्लेनकेनचित् ॥

तेनभागत्रयं तारपत्राणिषारिलेषयेत् ॥ ४८ ॥

धृत्वामूषापुटेरुद्धापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ समुद्धृत्य

पुनस्तालंदत्वारुद्धापुटेपचेत् ॥ एवंचतुर्दशपुटे

स्तारभस्मप्रजायते ॥ ४९ ॥

२ भाषानु०—चादीकी भस्म २ भाग शुद्ध हरतालको नीबूके रसमे १ प्रहरपर्यन्त गल करके पश्चात् ३ भाग चादीके अत्यन्त पतले और छे टे २ पत्रों ( टुकड़ों ) पर उनका लेपकरे और उनको शरावसपुटमे रखकर ३० जगली गोवरीकी आच दे इस प्रकार १४ बार आच देनेसे चादीकी भस्म होय ॥ ४८—४९ ॥

३ ताम्रमा०—सूक्ष्माणिताम्रपत्राणिकृत्वासंस्वेदयेद्गुधः ॥

वासरत्रयमम्लेनततःखल्वेविनिःक्षिपेत् ॥ ५० ॥

१ मट्टीके पटेहूए दो चिकोरे ( मगई दीये ) को लेकर उनको युक्तिमे पत्थर पर जलकर दोनाको ऐसे जोड़े कि निमही केर मगार मिलजावे और कुछ सी १ गेरे उमें वो भस्म करनेकी वस्तु होय उसे रगकर दोना मगई को जोड कपडमट्टीमे दृढ करदे कि निममे भीतर रखी हुई वस्तु बाहर न निकलने पावे इसे सरावसपुट में देवे ।

२ जिसे वस्तु, वो और मुशमा इन रकनरके जाच देनेसेभी वो जीवित नही रहे कि वस्तु न जाय ।

पादाशसूतकंदत्वायाममस्लेनमर्दयेत् ॥ तत  
उद्धृत्यपत्राणिलेपयेद्विगुणेनच ॥ ५१ ॥ गन्ध  
केनास्लघृष्टेनतस्यकुर्याच्चगोलकम् ॥ ततः  
पिष्ट्वाचमीनाक्षींचाङ्गेरींचाधुनर्नवाम् ॥ ५२ ॥  
तत्कल्केनवहिर्गोलंलेपयेदङ्गुलोन्मितम् ॥ धृ  
त्वातद्गोलकंभाण्डेशरावेणचरोधयेत् ॥ ५३ ॥  
वालुकाभिः प्रपूर्य्याथविभूतिलवणांबुभिः ॥ द  
त्वाभांडसुखेमुद्रांततश्चुल्ब्यांविपाचयेत् ॥ ५४ ॥  
कमवृद्धाग्निनासम्यग्यावद्यासचतुष्टयम् ॥ स्वा  
ङ्गशीतंसमुद्धृत्यमर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥ ५५ ॥ यामैकं  
गोलकंतच्चनिःक्षिपेच्छूरणोदरे ॥ मृदालेपस्तुकर्त  
व्यस्सर्वतोऽङ्गुष्ठमात्रकः ॥ ५६ ॥ पाच्यंगजपुटेक्षि  
तंमृतंभवतिनिश्चितम् ॥ वजनंचविरेकंचभ्रमंक्लृप्त  
मथारुचिम् ॥ ५७ ॥ विदाहंस्वेदमुत्क्लेदंनकरोति  
कदाचन ॥ ५८ ॥

३ तावेकी भस्म—भापानुवाद—शुद्धतावेके मर्हान छोटे २ पत्र (ठुकेडे )  
कारके उनको ३ दिनपर्यन्त नीवूके रसमें डालकर मंद २ आचसे पकावे  
पश्चात् उनको खरलमें डाल ॥ ५० ॥ उन शुद्ध ताम्रपत्रोंसे चतुर्थांश पाराभी  
उन्नीके साथ मिलाकर १ प्रहरपर्यन्त नीवूके रसमें खल करे (घोटे ), जब  
उसका गोला घनजावे तब उसे निकालकर उसमें दूनी ॥ ५१ ॥ नीवूके  
रसमें चूर्ण शुद्ध गजकवा उस गोलेपर लेप करे तदनंतर, मकोह, अथवा

१ रसेन्द्रेणपिपाताया य करोतिपुमानिद ॥ उदयेतस्वकीटानिजायन्तेनात्रसशयः ॥  
॥ १ ॥ तितान्ते तावे जी पुच्छ पिपा पावेके योगके तावेकी घन करतारै  
उसमरको जोतित तैय बुभियो उत्पन्न होताई ऐसा गमनरन मित्राई ।

चूका अथवा सॉठी इनमेंसे किसीएकको पीसकर ॥ ९२ ॥ उसके कल्केका उसी गोले पर दो अंगुल लेप करे पीछे उसे किसी भाड़े ( पात्र ) में रखकर उसे सकोरेसे ढाकदे जिससे कि वह गोला वहीं रुकजाय ॥ ९३ ॥ पश्चात् उस पात्रको बाह्य रेतासे पूरित और उसका मुख राख वा नमक पानीसे मुद्रित कर चूल्हेपर चढ़ावे ॥ ९४ ॥ पीछे क्रमवर्द्धित अग्निसे ४ प्रहरपर्यन्त उसे पकाये जब स्वागशीतल होजावे तब उस गोलेको निकालकर जमीकदके रससे मदित ( खल ) करे ॥ ९५ ॥ जब एक प्रहर घोटते घोटते होजाय तब उसका फिर गोलावनाकर उसे जमीकदके भीतर युक्तिसे रखे और उस जमीकदपर १ अंगूठे मात्र ऊँचा चहुँओर मृत्तिकाका लेप करे ॥ ९६ ॥ फिर उसे गजपुटमें पकाये तो निश्चय ताम्र भस्म होजावेगा और यह शुद्ध ताम्रभस्म उलढी भिरे चन ' दस्त भग यकाहट अरुचि ॥ ९७ ॥ दाह पसीनेका निकलना और जीका मलकना इत्यादि किसी उपद्रवको नहीं करता है ॥ ९८ ॥

४ वंगमा०-मृत्पात्रेद्रावितेवंगेचिश्चाश्चत्थत्वचारजः॥

क्षिप्त्वावङ्गचतुर्थांशमयोदव्याप्रचालयेत् ॥ ५९ ॥

ततोद्वियाममात्रेणवङ्गभस्मप्रजायते ॥ अथभस्म

समंतालंक्षिप्त्वाऽम्लेनविमर्दयेत् ॥ ६० ॥ ततो ग-

जपुटेपक्त्वापुनरम्लेनमर्दयेत् ॥ तालेनदशमां-

शेनयाममेकंततः पुटेत् ॥ एवंदशपुटैः पक्वंवङ्गभ-

वतिमारितम् ॥ ६१ ॥

१ रागे ( कथील ) की भस्म-भाषानुवाद-मृत्तिकाके पात्रमें ( मशीन वटे टिकटे में शुद्धकथीलको पिघलाकर उससे चतुर्थांश अमली और पीपलके श्रावके मशीन चूर्णको उसपर टालते जावे और लोहेकी कडलीसे हलाते जावे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार २ प्रहरकी आचमें वंग ( रागा ) भस्मरूप हो-

जवेगा फिर उस भस्मरूप वगकी समान शुद्ध हरताल लेकर दोनोको नीबूके रससे घोंटे ॥ ६० ॥ जब दोनोंका एकजीव होजाय तब गोला बनाकर शराव सपुटमे रखके गजपुटमें फूक ( पका ) देवे, स्वागशतिल होजानेपर उसे निकाल उससे दशमाश शुद्ध हरताल लेकर दोनोको १ प्रहरपर्यंत पुनः नीबूके रससे घोंटे पहिलेके समान पुन सपुटकर गजपुटमे फूकदे, इस प्रकार १० दशबार फूकनेसे वगभस्म होय ॥ ६१ ॥

५ यशदमा०—यशदस्यवंगवन्मारणंभवति ॥ ६२ ॥

६ नागमा० तांबूलरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ॥

द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागोनिरुत्थंभस्मजायते ॥ ६३ ॥

५ जस्तेकीभस्म—रागेकी भस्म करनेकी समान कियासेही जस्तेकीभी भस्म बनाओ ॥ ६२ ॥

६ सीसकीभस्म—पानके रसमें मैन्शिल घोटकर शुद्धशीशेके कटकवेधी पत्रापर लेपकर शरावसपुटमें रखकर फूकदे, इसप्रकार ३२ बार फूकदेनेसे सीसकी निरुत्थ भस्म होवे ॥ ६३ ॥

७ लोहमा०—क्षिपेच्चद्वादशांशेनद्वरदंतीक्ष्णचूर्णतः ॥

मर्दयेत्कन्याद्रावैर्यामियुग्मंततःपुटेत् ॥ ६४ ॥

एवंसप्तपुटैर्मृत्युंलोहचूर्णमवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥

कृत्स्नमिदमुक्तंभा० प्रका० पूर्वखंडस्यद्वितीयभागे ।

इति सप्तधातुमारणम् ।

७ लोहभस्म—भापानुवाद—शुद्धलोह ( पोलादके ) चूर्णका द्वादशाश ( बारवाहिम्सा ) शुद्ध हिगुल लेकर दोनोंको गवारपाठके रससे २ प्रहरपर्यन्त खरत करे पश्चात् शरावसपुट करके गजपुटमे फूकदे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार सातबार फूकनेसे लोह भस्म होय ॥ ६५ ॥ यह सातोवातुमारणविवि भावप्रकाशके पूर्वखंडके दूसरे भागमें लिखी है ॥

सम्यगीपधवल्पानालोहकृत्प, प्रशस्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लोहमादोविमारयत् ॥ १ ॥ नाय, पचेत्तचपलादवीगुर्वीत्रयोदशात् ॥ आदौ भास्तन कर्मकर्तव्यमभिन्यते ॥ २ ॥ ' जोजमृतांद्वायस्वाहा इतिप्रथातरे ।

अयोपधातूना मारणम् ।

८ स्वर्णमा०मा०-कुलत्थस्यकषायेणघृद्वातैलेनवापुटेत् ॥

तक्रेणवाजमूत्रेणम्रियतेस्वर्णमाक्षिकम् ॥६६॥शार्ङ्ग०

९ रौप्यमाक्षिकमा०-स्वर्णमाक्षिकमारणप्रकारेणरौप्य  
माक्षिकस्यापिमारणम् ॥ ६७ ॥

भाषानुवाद.—अत्र उपधातु मारण दर्शाते हे—

८ सोनामक्खीकीभस्म—शुद्ध सोनामक्खीको कुलथीके कायसे अथ ॥  
तेलसे अथवा छाछसे अथवा बकरीके मूत्रसे खल करके शरावसपुटमे रखकर  
गजपुटमे फूकदे तो सोनामक्खी भस्म होय ॥ ६६ ॥ ऐसा शार्ङ्गधरमे लिखाहे.

९ रूपामक्खीकीभस्म-रूपामक्खीकी भस्म सोनामक्खीकी भस्म बनानेकी  
क्रियानुसार बनाओ ॥ ६७ ॥

१० तुत्थमा०—लकुचद्रात्रगंधाश्मटङ्कणेनसन्वितम् ॥

वज्रमृषागतं द्वित्रिकुङ्कुटैर्मृतिमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ अ० त०

११—१२ कांस्यरीत्योर्मा०—कांस्यरीत्योर्मारणमनुपानं  
चापिताम्रवज्ज्ञेयम् ॥ ६९ ॥

१३ सिन्दूरमारणनिषेधः—सिन्दूरस्यप्रयोगोहिनदृष्टःकु  
त्रचित्पृथक् ॥ तस्माद्युक्तस्थलेयोज्यमुपदेशोगुरो  
रिति ॥ ७० ॥ अ० त० ।

१४ शिलाजतुमा०—शिलायांगंधतालाभ्यामातुलंगर  
सेनन ॥ धुटितंहिशिलाधातुम्रियतेष्टोपलेनच ७१ ॥  
॥ अ० त०



कुक्कुट ( कठल ) के रसमें खरलकरके वज्रमूषामे रखकर कुक्कुटपुटम दो तीनवार फूंक तो नीलेथोथेकी भस्म होय ॥ ६८ ॥

११-१२ कासे और पित्तलकी भ०—कासे और पित्तलकी भस्म बनानेकी क्रिया ओर उसके अनुपानादि ताब्रेकी भस्म ओर उसके अनुपानोके समान जानो ॥ ६९ ॥

१३-सिंदूरभस्म अभाव—सिंदूर भस्म बनानेकी विधि कहीं नहीं दृष्ट पडती इसलिये शुद्ध सिंदूरको महलम आदिमे युक्तकरना चाहिये ऐसा सदैवोका उपदेश है ॥ ७० ॥

१४ शिलाजीतभ०—शिलाजीतमें शुद्ध गंधक और शुद्ध हरिताल मिलाकर त्रिजोरे नीवूके रसमें घोटकर शरावसपुटमे रखकर आठ उपली ( जगली गोवरी ) की आचदे इस प्रकार ८ आचदेनेसे शिलाजीतकी भस्म होय ऐसा त्रयातरमें लिखा है ॥ ७१ ॥

अथ मण्डूरविधि ।

अश्वाङ्गारैर्यमेत्किट्टलोहजंतद्ववांजलैः ॥ सेचये  
त्ततततत्तत्सवारंपुनःपुनः ॥ ७२ ॥ चूर्णयित्वा त  
तःकाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ॥ आलोड्य भर्जये  
द्बहोमण्डूरं जायते वरम् ॥ ७३ ॥ शार्ङ्ग ० ।

अथ हंसमंडूरविधिः ।

मण्डूरं मर्दयेच्छृङ्गं गोमूत्रेष्टगुणेष्वेत् ॥ श्यूषणं  
त्रिफलाजुस्ताविडंगचट्यचित्रकैः ॥ ७४ ॥ दार्वी

१ दोभागतृणभस्म—१ भाग बावीची मिट्टी—१ भागलोहकीट—१ भाग वेतपापाण-  
गुण पुठमनुष्पके वाल रनखर्चोकी चकरीके दूधमें औठाके पश्चात् दो प्रहरपर्यन्त अच्छे  
प्रवास करके पीसे जब सब एकजीवहोकर अत्यंत महीन होजावे तब उसकी गाँके  
रानखटा गोले और लंबी टकन रहित मूष बनावे इसे वज्रमूषा ओर अन्धमूषाभी  
कहते हैं ।

२ शिलाजीतभ०—शिलाजीत और उतारा गहरा गड्ढा खोदकर उसमें गोवरी आधे तक  
भर पचास गोवरीसपुट उसमें रखकर ऊपर तिन गोवरीभर दे रसे कुक्कुटपुट करत

ग्रन्थीदेवदारुतुल्यंतुल्यंविमर्दयेत् ॥ एतन्मण्डूर  
तुल्यंचपाकान्तेमिश्रयेत्तत्तः ॥ ७५ ॥ भक्षयेत्कर्ष  
मात्रंतुजीर्णान्तेतक्रभोजनम् ॥ पाण्डुशोफंहली  
मंचह्यरुस्तंभंचकामलाम् ॥ अर्शासिहन्तिनोचि  
त्रंहंसमण्डूरकाह्वयम् ॥ ७६ ॥ ग्रं० त०

१ मंडूर बनानेकी विधि-भाषानुवाद.—बहेडेकी लकडीके कोलसोंकी अंगारसे लोहेके कीटको खूब तपा तपा कर ७ चार गोमूत्रमे बुझाये ॥ ७२ ॥ पश्चात् महीन पीसकर उससे दूने त्रिफलाके काथमें उसे मिलाके १ हडीमें भरदे और हडीका मुख सराईसे बंदकर कपडमट्टीसे दृढ करदेवे पीछे उसे गजपुटमे फकदे तो उत्तम मंडूर होय ॥ ७३ ॥ ऐसा शार्ङ्गधर्म लिखाहे, इस मंडूरके अनुपान लोहभस्मके समान जानो

२ हंसमंडूर—एवोक्तप्रकारसे बनाये हुए मंडूरको प्रथम त्रिफलाके काथमें खरलकरके पश्चात् अष्टगुण गोमूत्रमे मिलाकर हडीमे भरकर पकाये । पूर्वाक्त विधिमे फके, जब पककर स्वागशीतल होजाय तब सोंठ, मिर्च, पीपल, तिक्तक, नागरमोथा, त्रायविटग, वज्र, चित्रक, दाहहलदी, पीपलामूल, और देवशक इन सब समानका महीन चूर्ण उसमे मिलाकर खरल करे जब एकगी होजाय तब इसमेसे १ कर्ष भर नित्य सेवन करे और उसके पचनेपर ऊपरसे पाण्ड पीये तो पाण्ड, शोथ, हृत्पिण्ड, ऊरुतम ( पैरोका रहजाना) कामला और जर्श ( बमशीर ) इन रोगोंको बह हंसमंडूर नाश करता हे इसमे सशय नहीं हे ऐसा क्रमान्तरमे लिखाहे ॥ ७४ ॥ ७२ ॥ ७६ ॥

रसमागणम् ।

काकोदुंबरिकादुग्धैरसंकिंचिद्विमर्दयेत् । तदुग्धेनृ  
ग्रहिंश्वमपायुगमंप्रकल्पयेत् ॥ ७७ ॥ क्षिप्तवान  
त्पुष्टेस्तंतत्रमुद्रांप्रदापयेत् ॥ धृत्वातंगोलकंप्रा  
प्तोन्नमपासम्पुष्टेऽधिके ॥ ७८ ॥ पचेद्भजपुष्टेनैव  
सप्तकंयानिभस्मनाम् ॥ ७९ ॥

अन्यच्च—नागवल्लीरसैर्वृष्टः कर्कोटीकंदगर्भितः ॥

कुन्नुवालंपुटेपक्त्वासूतोयात्येवभस्मताम् ॥८०॥

भा० प्र० पू० खं० २ भा० ॥

भाषानुवादः—अब पारेकी भस्म बनानेकी क्रिया लिखते हैं—

१ पारामस्म—कालेगूलरके दूधमें शुद्धपारेको कुछकालतक घोटें, जब उसकी गोली बनजावे तब गूलरके दूधमें हांगको खरलकरके उसके २ मृग बनावे और उसगोलीको मृगमें रखकर उन दोनों मूषोंको गूलरके दूधमें खरल की हुई हांगसेही दृढजोड़ ( मुद्रा ) दें, पश्चात् मुलतानीमट्टीकी मूषोंमें या शरावसपुटमें उसपारकी गोलीनहित पूर्वोक्त मृगका रखकर पक्का मुद्रा ( कपडमट्टी ) से दृढ मुद्रित करदे और तुला तार गजपुटमें फूकेदे तो पारामस्म होय ॥ ७७-७८-७९ ॥

२ प्रकार—शुद्धपारेको नागरखेलीके पानके रसमें घोटकर वाझकके डीके कदमें रखकर उसे शरावसपुटमें रक्के और उसे कपडमट्टीसे दृढकर सुखाधे पश्चात् गजपुटमें फूकेदे तो पारेकी भस्म होय ॥ ८० ॥ ऐसा भावप्रकाशमें लिखा है.

२ रससिद्धाविधि ।

तूतपञ्चपलंस्वदोषरहितं तुल्यभागोवलिर्द्वौटंकौ  
नवसादरस्यतुवरीकर्पश्चसंमर्दितः ॥ कुप्यांकाच  
भुविस्थितश्चसिकतायत्रेन्निभिर्वासरैः पक्कोवहि  
निरुद्धवत्यरुणक्षः सिन्दूरनाभारसः ॥८१॥ ग्रं० त० ।

३ रसकर्पूरविधि ।

ष्टिंशंशुभ्रनाडसमलं वज्रां वुनाचैकसत्सूतं धातु  
पुतं खटीकवलिं तत्संपुटे रोधयेत् ॥ अंतःस्यंदलवण  
संशुभ्रनाडसमलं वज्रां वुनाचैकसत्सूतं धातु  
पुतं खटीकवलिं तत्संपुटे रोधयेत् ॥ ८२ ॥ ग्रं० त० ।

२ रससिदूरविधिः, भाषानुवादः—५ पल शुद्धपारा ५ पल शुद्ध गवक्षर  
 टकनवसागर १ कर्षफिटकरी इन सबको ३ दिनपर्यन्त घोटकर अग्नि सहन  
 शीला ( आतशी ) शीशीमें भरदे और उसपर कपडमड़ी देकर ३ दिनपर्यन्त  
 वालुंकायत्रमें मद मध्य और तीव्र आच देवे तो रक्तवर्णका रससिदूर बनजावेगा  
 ॥ ८१ ॥ ऐसा प्रथातरमें लिखा है

३ रसकपूरविधिः—शुद्धपारेको खारीनोन और यूहरके दूध सग घोटकर  
 लोहेके सपुटमें रखे ओर उस लोहसपुटका मुख खडिया मड़ीसे दृढ बद्धकर  
 इस सपुटको एकहड्डीमें रखकर उसमें नोन भरदे और उसे भट्टीपर चढाकर १  
 दिनभर आचदे, जब स्वाग शीतल होजावे तब उस सपुटको युक्तिसे निकाल-  
 कर ऊपरके सपुटमें जो श्वेतभस्म जमे उसे निकालले इसे रसकपूर कहेंगे  
 ऐसा रसमजरीमें लिखा है ॥ ८२ ॥

४ हिङ्गुलमा०—बल्लमात्रंतालपिष्टंशरावेस्थापयेत्ततः॥

तस्मिन्कर्षसमं देयं सकलंदरदस्य च ॥ ८३ ॥ पूरये  
 दार्द्रकरसैर्द्विगुणं तत्र बुद्धिमान् ॥ पुष्पाणि शाणमा  
 त्राणि परितः स्थापयेत्ततः ॥ ८४ ॥ शरावसंपुटेद  
 त्वाचुल्ल्यां मध्याग्निना पचेत् ॥ घटिकात्रयपर्यन्तं  
 तत उत्तार्य पेपयेत् ॥ ८५ ॥ तावृले गुंजमात्रं तु देयं  
 पृष्टिकं परम् ॥ पांडोश्च ये च शूले च सर्वे रोगे पुयोज  
 येत् ॥ ८६ ॥ अ० त० ।

पश्चात् उसपर दूसरा शराव रखकर सपुट कपडमईसे दृढ करदे और चूल्हे-  
पर रखके ३ घडी मदाग्निसे पकावे जब स्वाग शीतल होजाय तब सपुट्रमें  
से हिंगुल, भस्मको निकालके खरल करले, इसमेंसे १ रती भस्म पानके सग  
सेवन करे तो पुष्ट होय और पाडु, क्षयी, शूल ये सब रोग दूर होवें. इस भस्म-  
को समस्त रोगमात्रपर विचारके देना चाहिये ऐसा प्रयातरमे लिखा  
है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

५ अश्रकमा०—कृत्वाधान्याश्रकंतच्चशोषयित्वाथम-  
र्दयेत् ॥ अर्कक्षीरैर्दिनंखल्वेचक्राकारंचकारयेत्  
॥ ८७ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्चसम्यग्गजपुटेपचेत् ॥  
पुनर्मर्द्यपुनः पाच्यंसप्तवारान्पुनःपुनः ॥ ८८ ॥  
ततोवटजटाकाथैस्तद्वदेयंपुटत्रयम् ॥ म्रियते-  
नात्रसंदेहः प्रयोज्यंसर्वकर्मसु ॥ ८९ ॥  
भा० प्र० पू० खं० २ भा० ।

अन्यच्च—पीतामलकसौभाग्यपिष्टंचक्रीकृताश्रकम् ॥  
पुटितंपष्टिवाराणिसिंदूराभंप्रजायते ॥ क्षयाद्य  
खिलरोगघ्नंभवेद्रोगापनुत्तये ॥ ९० ॥ ग्रं० त० ।

६ हरितालमा०—पलमेकंशुद्धतालंकौमारीरसमर्दि-  
तम् ॥ शरावसंपुटेक्षिप्त्वायामान्द्वादशकंपचेत्  
॥ ९१ ॥ स्वांगशीतंसमादायतालकंचमृतंभवेत् ॥  
गलत्कुष्ठंहरैच्चैवतालकंचनसंशयः ॥ ९२ ॥ ग्रं० त० ।

अश्रकभस्म—भापानुवाद—प्रथम घान्योश्रकको आकडेके दूधमें १

१ शुद्ध अश्रकसे चतुर्थश चावल लेकर दोनोंको कबलके टुकडेमें बाध ३  
दिन रात पानीमें भीगनेदे पश्चात् उस पोटलीको उस पानीमे रख मर्दन करे जब  
पाटलीनेसे सत्र अश्रक जलमे जाजावे तब उस जलके पात्रको टेटा करदे उसमें जो  
नीचे अश्रक जमजावे उसे लेले और ऊपरके पानीको फेकदे इसे घान्याश्रककहतेहैं।

दिन खरल करके उसकी छोटी २ टिकिया बनाके सुखावे ॥ ८७ ॥ पश्चात् उन टिकियोको आकडेके पत्तोसे लपेट २ कर गजपुटमें फूकदे, जब स्वागशी-तल होजावे पुनः अर्कदूधमे घोटकर पूर्ववत् फूके इसप्रकार ७ बार आकडेके दूधमे घोटघोटके फूकतेजावे ॥ ८८ ॥ पीछे बडकी जडके काथमें गोठ २ कर तीनबार फूके तो अभक्कभस्म होय, इसे समस्त रोगोंमें पृथक् २ अनुपातोसे देना चाहिये ऐसा भावप्रकाशमे लिखाहै ॥ ८९ ॥

दूसरा प्रकार—वान्याभक्कमे शुद्ध हरताल आवलेका रस और शुद्ध सुहागा मिलाकर घोटे और उसकी छोटी २ टिकिया बनाकर सुखावे पीछे गजपुटमें फूकदे, इसप्रकार ६ आचदेनेसे सिदूरके समान अभक्ककी लालभस्म होग यह भस्म क्षयादि सक्तलरोगोंको नाश करनेमे समर्थ है ऐसा ग्रन्थांतरमे लिखाहै ॥ ९० ॥

३ हरितालभस्म—१ पल शुद्ध हरतालको गयारपाठके रसमे घोटकर उसकी छोटी २ टिकिया बनाकर उन्हे सुखाकर शरावसपुटमे रख १२ प्रहर की आचडे तो हरतालभस्म होय यह गलित कुष्ठादि रोगोंका नाश करनेमे समर्थ ॥ ९१ ॥ २, २ ॥ ५० त० ।

७ वज्रमारणम्—मेघशृङ्गभुजंगास्थिकूर्मपृष्ठाम्लतै-  
नसान् ॥ शशदन्तंसमंपिष्ट्वावज्रीक्षीरेणगोल-  
कम् ॥ कृत्वातन्मव्यगंवज्रांघ्रियतेऽध्मातमेवहि  
॥ ९३ ॥ भा० प्र० ॥

८ प्रवालमारणम्—स्वर्णमाक्षिकवन्मुक्ताप्रवालानिचमा  
रयेत् ॥ ९४ ॥ शार्ङ्ग० ।

८ मुंगेकीभस्म०—सोनामकखाके समान क्रियासे मोती और मूंगेभी भस्म  
होतेहैं ऐसा शार्ङ्गवस्मे लिखाहै ॥ ९४ ॥

इति श्रीमत्पण्डितज्ञारसराधिरचिते भाषानुवादविभूषितेऽनु-  
पानदर्पणे धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविधोपविषाणा  
शोधनमारणविवेककथने समम प्रमोदः ॥ ७ ॥

अथातस्सुवर्णादीनांपक्वापक्वभस्मनोगुणागुणविवे  
कं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

१ पक्वस्यसुवर्णभस्मनोगुणाः—स्वर्णशीतंपवित्रंक्षयवमि  
कस्तनद्रवासमेहास्त्रपित्तं क्षैण्यंक्ष्वेडक्षतास्त्रप्रदरग  
दहरंस्वादुतिकंकपायम् ॥ वृष्यंमेधाश्लिक्तान्तिप्रद  
मधुरसकं कार्श्यहानिनिदोषोन्मादापस्मारशूलज्व-  
रजयवपुषोवृंहणनेत्रपथ्यम् ॥ २ ॥ ग्रं० त० ।

सुवर्णका पक्वाभस्म—भाषानुवादः—अब हम इसके आगे सुवर्ण आदिके  
पक्व ( पक्की ) भस्मके गुण और अपक्व ( कच्ची ) भस्मके दोषोंको वर्णन  
करेंगे ॥ १ ॥

१ सुवर्णके पक्केभस्मके गुण—सुवर्णभस्म शीतल ( ठंडी ), शुद्ध, स्वादिष्ट,  
तीक्ष्ण, कसेय, और मिष्ट है क्षय, वमन, खोसी, श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त,  
नीणता, त्रिप, पात्र, रक्त ( लाल ) प्रदर, कृमता, त्रिदोष, उन्माद, अप-  
स्मार ( मृगी ), शूल और ज्वर इन रोगनाशक बल, बुद्धि, काति, पुष्टि,  
दिग्गदृष्टि, प्रकाशक है ॥ २ ॥

अपक्वस्वर्णभस्मदोषाः—बलंचवीर्यहरतेनराणारोगत्रजा  
न्पोषयतीहकाये ॥ असौख्यकार्यचसदैवहेमाऽप  
कंसदोषं मरणं करोति ॥ ३ ॥

सुन्नेके कच्चेभस्मके दोष—भाषानुवाद—सुन्नेका कच्चाभस्म बल, वीर्य और सुखकीहानि रोगगणकी वृद्धि, और मनुष्योंको मरण करताहै ॥३॥ ग्र० त० ।

२ पक्कस्यरजतभस्मनोगुणाः—तारंचतारयतिरोगसमुद्रपा  
रंदेहस्यसौख्यदमिदं पलितंनिहन्ति ॥ हन्तीहरो  
गविषदोषमलंप्रसह्य वृष्यंपुनर्नवकरंकुरुतेचिरायुः ॥  
॥ ४ ॥ ग्र० त० ।

२ रूपेकेपक्केभस्मके गुण—रूपेका पक्काभस्म रोगसमुद्रसे पारलगानेवाला देहको सुखप्राप्त करनेवाला वृद्धता और विषदोषका नाशकरनेवाला तरुणता और आयुष्य देनेवाला है ॥ ४ ॥

अपक्वरौप्यभस्मदोषाः—अशुद्धंरजतंकुर्यात्पांडुकंडुगल  
ग्रहान् ॥ विविधंवीर्यनाशंचबलहानिश्शिरोरु  
जम् ॥ ५ ॥ ग्र० त० ।

रूपेकेकच्चे भस्मके दोष—भाषा०—रूपेका कच्चा भस्म पांडु, खुजली, गलग्रह, काष्ठिज, वीर्यनाश, बलहानि और शिरोरोगको करताहै ॥ ५ ॥

३ पक्कस्यताम्रभस्मनोगुणाः—कुष्ठप्लीह ज्वरकफमरुच्छ्वास  
कासार्तिशोफस्तन्द्राशूलोदरकृमिवर्मीपांडुमेहाति  
सारान् ॥ अशोर्गुल्मक्षयभ्रमशिरोव्याधिमेहा  
दिहिक्काशशुद्धंशुल्वंहरति सततंवह्निवृद्धिकरोति ॥  
॥ ६ ॥ ग्र० त० ।

अपक्कताम्रभस्मदोषाः—एकोदोषोविषेतामेत्वसम्यङ्मा  
रितेऽष्टते ॥ दाहःस्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छाक्लेदोरेकोवमि  
र्भ्रमः ॥७॥ भा० ग्र० ।

३ तावेकेपक्केभस्मके गुण—तावेका पक्काभस्म कुष्ठ, प्लीहा, कृमि, तमन, पांडु, प्रमेह और दृक्कीका नाश और अग्निवृद्धि करताहै ॥ ६ ॥ ऐसा ग्रथांतरमें लिखाहै



तांत्रिके कच्चेभस्मके दोष-तात्रिका कच्चाभस्म दाह, स्वेद, अरुचि, मूर्च्छा,  
जीका मलकना, रेचन, वमन और भ्रम इन आठ दोषोंको करताहै ॥ ७ ॥  
ऐसा भावप्रकाशमें लिखाहै.

४ पक्कस्यवंगभस्मनोगुणाः--बल्यंदीपनपाचनंरुचिकरं  
प्रज्ञाकरंशीतलं सौंदर्यकविवर्द्धनंहतरुजंचारोगता  
कारकम् ॥ धातुस्थैर्यकरंक्षयक्षयकरंसर्वप्रमेहापहं  
वंगंभक्षयतोन्नरस्यनभवेत्स्वप्नेपिशुक्रक्षयः ॥ ८ ॥  
ग्रं० त० ।

अपक्कस्यवंगभस्मनोदोषाः--पाकेनहीनः खलुवंगको  
सौकुष्ठानिगुल्मानिमहांतिरोगान् ॥ पांडुप्रमेहा  
पचिवातशोणितंवलापहारंकुरुतेनराणाम् ॥ ९ ॥  
ग्रं० त० ।

५ पक्कयशदभस्मगुणाः-- यशदंतुवरंतिक्तंशीतलंकफ  
पित्तहृत् ॥ चक्षुष्यंपरमंमेहंपांडुश्वासंचनाशयेत्  
॥ १० ॥ भा० प्र० ।

अपक्कयशदोषाः--अपक्कयशदरोगान्प्रमेहाजीर्ण-  
भारुतान् ॥ वमिभ्रमिकरोत्येनंशोधयेन्नागवत्ततः ॥  
॥ ११ ॥ ग्रं० त० ।

६ पक्कनागभस्मगुणाः--क्षयपवनविकारेगुल्मपाङ्गामये  
पुभ्रमकृमिकफशूलेमेहकासामयेषु ॥ ग्रहणिगुदग  
द्वेनष्टवहौप्रशस्तः शुभविधकृतनागः कामपुष्टिं द  
दाति ॥ १२ ॥ ग्रं० त० ।

अपक्वनागभस्मदोषाः--कुष्ठानिगुल्मारुचिपांडुरोगान्क्ष  
यंकफरक्तविकारकृच्छ्रम् ॥ ज्वराश्मरीशूलभगंदरा  
ढ्यं नागत्वपक्वंकुरुतेनराणाम् ॥ १३ ॥

४ कथीलके पक्वेभस्मके गुण--भापानु०--वग ( कथील ) का पक्का भस्म बल, रुचि, बुद्धि, शीतलता, सौंदर्यता, कविता, आरोग्यता और वातुस्थिरताकारक तथा क्षयी, प्रमेहादि समस्तरोगहारक और दीपन पाचन हे. वंग-भस्म भक्षण करनेवाले मनुष्यका स्वप्नमेर्भी वीर्य स्थलित नहीं होता ॥ ८ ॥

कथीलके कच्चेभस्मके दोष--कथीलका कच्चाभस्म कुष्ठ, गुल्म, पांडु, प्रमेह, अपाचि, वातरक्त इत्यादि महान् रोगकारक और बलहारक होता है ॥ ९ ॥  
ऐसा प्रयातरमें लिखा है

५ जस्तेके पक्वेभस्मके गुण--जस्तेका पक्काभस्म कसेला, कडवा और ठंडा है, कफ, पित्त, प्रमेह, कामला और श्वासनाशक तथा दिव्यदृष्टि प्रकाशक है ॥ १० ॥ ऐसा भावप्रकाशमें लिखा है.

जस्तेके कच्चेभस्मके दोष--जस्तेका कच्चा भस्म प्रमेह, अजीर्ण और भ्रमआदि अनेकरोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

६ शीशेके पक्वेभस्मके गुण--शीशेका पक्काभस्म क्षयी, वादी, गुल्म, कामला, भ्रम, कृमि, कफरोग, शूल, प्रमेह, खासी, सप्रहर्णी, बवासीर, गुदारोग और मदाग्निको दूरकरता है तथा बलको बढ़ाता है ॥ १२ ॥

शीशेके कच्चेभस्मके दोष--शीशेका कच्चाभस्म, कुष्ठ, गोला, अरुचि, पांडु क्षयी, कफरोग, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, पयर्षा, शूल और भगदर इन रोगोंको प्रगट करता है ॥ १३ ॥

७ पक्वलोहभस्मगुणाः--लोहंमृतंकज्जलसंनिभंतुभुंक्ते  
सदाथोरसराजयुक्तम् ॥ तस्यैवदेहेनभवन्तिरोगामृ  
तोपिकामः पुनरेतिधाम् ॥ १४ ॥ आयुः प्रवृत्ताव  
लवीर्यकर्तारोगस्यहर्तामदनस्यहर्ता ॥ अयस्समा  
ननहि किंचिदन्यद्रसायनंश्रेष्ठतमंवदन्ति ॥ १५ ॥

अपक्वलोहभस्मदोषाः-अल्पौषधस्तौकपुटेहीनगं  
धरुपारदैः ॥ अपक्वलोहजंचूर्णमायुःक्षयकरंपरम्  
॥ १६ ॥ पण्डत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्धृद्रोगशूलौ  
कुरुतेश्मरीच ॥ नानारुजानांचतथाप्रकोपंकरो  
तिहृत्तासमशुद्धलोहम् ॥ १७ ॥ ग्रं० त० ।

७ लोहेके पक्वभस्मके गुण-श्यामवर्णवाले लोहेके पक्वभस्मको पारदभस्म सहित जो नित्य सेवन करे उसके शरीरमें कभी रोग उत्पन्न नहीं होते और नष्टहोगया कामभी पुनः शरीरमें प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ आयु, बल, वीर्य और कामको बढ़ानेवाला, रोगनाशक जैसा लोहभस्महै वैसा और कोई श्रेष्ठ रसायन नहींहै ऐसा बडे २ वैद्य कहते हैं ॥ १५ ॥

लोहेकेकच्चेभस्मकेदोष-जिसमें लिखित औषध और पुटोंसे न्यून तथा पारे गन्धक रहित लोहेका कच्चाभस्म सो आयुको क्षीण करताहै ॥ १६ ॥ तथा नपुंसकता, कुष्ठ, हृद्रोग, शूल, और पत्थरी आदि रोगोंको उत्पन्न करता और मृत्युको प्राप्तकरताहै ॥ १७ ॥ ये सब ग्रंथतरमें लिखाहै.

८ पक्वसुवर्णसाक्षिकभस्मगुणाः-स्यान्माक्षिकस्ति-  
क्तसुदीपनः कटुर्दुर्नामिकुष्ठामयभूतनाशनः ॥  
पांडुप्रमेहक्षयनाशनोलघुस्सत्त्वंमृतंतस्यसुवर्ण-  
वद्गुणैः ॥ १८ ॥ ग्रं० त० ।

अपक्वसुवर्णसाक्षिकभस्मदोषाः-अपक्वमाक्षिकेणाशु-  
देहः संक्रमतेरुजा ॥ तद्दोषविनिवृत्त्यर्थमनुपानं  
प्रवीक्ष्यहम् ॥ १९ ॥ ग्रं० त० ।

९ पक्वौषधसाक्षिकभस्मगुणाः-माक्षिकोरजतहाटक-  
प्रभश्शोधितोजतिगुणदस्सुसेवितः ॥ मेहकुष्ठ-  
कृमिशोफपांडुतापस्मृतिहरतिसोश्मरीजयेत् ॥  
॥ २० ॥ ग्रं० त० ।

अपक्रौप्यमाक्षिकभस्मदोषाः-अपक्रौप्यमाक्षिकै-  
णामयाअनेकाश्चभवन्ति ॥ २१ ॥

१० पक्वापकतुत्थभस्मगुणदोषाः-तुत्थभस्मकफंह-  
न्तिपामांकुष्ठंविषंकृमीन् ॥ चक्षुष्यंलेखनंभेदि  
शुद्धिहीनं हि दोषकृत् ॥ २२ ॥ ग्रं० त० ।

११ शुद्धशिलाजतुगुणाः-पांडुरंसिकताकारंकपूरा-  
भंशिलाजतु ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाडु-  
नाशनम् ॥ २३ ॥ ग्रं० त० ।

अशुद्धशिलाजतुदोषाः-अशुद्धंदाहमूर्च्छादिन्भ्रमपि  
तास्रशोणितम् ॥ शिलाजतुप्रकुरुतेमांघ्रसन्नेश्च  
विड्ग्रहम् ॥ २४ ॥ ग्रं० त०

८ सोनामक्खीके पक्केभस्मकेगुण-सोनामक्खी तीक्ष्ण, दीपन, कटु और  
हल्की है, यह, अर्श, कुष्ठ, पाडु प्रमेह और क्षयीका नाश करती है इसका  
पक्वाभस्म सुवर्णभस्मके समान गुणकारकहै ॥ १८ ॥

सोनामक्खीकेकच्चेभस्मकेदोष-सोनामक्खीके कच्चे भस्मके खानेसे द्रुहमें  
अनेकप्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं उनकी शांतिका उपाय आगे ९ वें प्रमोदमें  
वर्णन करेंगे ॥ १९ ॥

९ रूपामक्खीकेपक्केभस्मकेगुण-रूपामक्खी रूपे और सोनेके समान  
कातिमती होतीहै यह शोधित अत्यंत गुणदात्री और इसके पक्वभस्मसेवनसे  
प्रमेह, कुष्ठ, कृमि, शोथ, कामला, अपस्मार तथा पथरी आदि अनेक रोग  
दूर होते हैं ॥ २० ॥

रूपामक्खीकेकच्चेभस्मकेदोष-रूपामक्खीके कच्चे भस्म भक्षण करनेसे  
अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २१ ॥

१० नीलेयोथेकेपक्केभस्मकेगुणऔरकच्चेकेदोष-नीलेयोथेका पक्वाभस्म  
कफ, खुजली, कुष्ठ, विष, नेत्ररोग और विषका नाश करताहै और नीले-  
थोथेका कच्चाभस्म रोगकारकहै ॥ २२ ॥

११ शुद्धशिलाजीतके गुण—शुद्धशिलाजीत मूत्रकृन्त, पथरी, प्रमेह कामला और पाडुका नाश करता है ॥ २३ ॥

अशुद्धशिलाजीतके दोष—अशुद्धशिलाजीत दाह, मूर्च्छा, भ्रम, रक्तपित्त, रुधिरकोष, मदाग्नि और मलावरोध करता है ॥ २४ ॥

१२ पक्वपारदभस्मगुणाः—यावन्नहरवीजंतुभक्षयेत्पारदं मृतम् ॥ तावत्तस्य कुतो मुक्तिर्भोगाद्रोगाद्भवा दपि ॥ २५ ॥

अन्य०—मूर्च्छातोगदहत्तथैव खगतिं धत्ते विवद्धोऽर्थ दस्स्याद्भस्मामयवार्धकादिहरणं वृष्यपुष्टिकान्तिप्र दम् ॥ वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानंद दं शार्दूला तुलसत्त्वकृच्च भुवि जान् रोगानुसारी स्फुटम् ॥ २६ ॥

अशुद्धापक्वपारदभस्मदोषाः संस्कारहीनः खलु सूतरा जोयस्सेवते तस्य करोति बाधाम् ॥ देहस्य नाशं वि दधाति नूनं कुठादि रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ २७ ॥

१२ पारेके पक्वभस्मके गुण—भापानुवादः—जवतक मनुष्य पारेके भस्मका सेवन नहीं करता तबतक भोग, रोग और ससारसे छुटकारा नहीं पाता ॥ २९ ॥

अन्यञ्च—मूर्च्छितपारा रोगोंका नाश और आकाशमार्गमें चलनेकी शक्ति करे दानै, बद्ध ( बँधा हुआ ), पारा धनप्रद होता है मृतपारा तरुणता, दिव्यदृष्टि, कांति, वीर्य, बल, स्त्रीभोगमें आनंद देनेवाला मृत्युनाशक सिंहसमान पराक्रम कारक और समस्त रोगहारक होता है ॥ २६ ॥

अशुद्ध तथा अपक्वपारेके दोष—अशुद्ध पारेके सेवनसे शरीरपीडा कुष्ठ आदि अनेक रोग और मृत्युभी होना सम्भव है ॥ २७ ॥

१३ शुद्धरससिंदूरगुण—हरति चरसं सिंदूरं कासश्वासाग्निमान्द्यमेहगणान् ॥ रक्तविकारं कृच्छ्रं ज्वरादि रोगान्यथानुपानयुतम् ॥ २८ ॥

अशुद्धरससिंदूरदोषाः—रससिंदूरमशुद्धाद्रसांघ्रिजातं  
पारदवद्रोगान् ॥ कुर्याच्चेतच्छान्त्यैधृतसरिचरजः  
पिवेत्तुसप्तदिनम् ॥ २९ ॥ ग्रं० त० ।

१४ रसकर्पूरगु०—देवकुसुमचन्दनकस्तूरिकुंकुमैर्युक्तम् ॥  
खादन्हरतिफिरंगंव्याधिं सोपद्रवंघोरम् ॥ विन्द  
तिवहेदीप्तिपुष्टिर्वीर्यवलंविपुलम् ॥ रमयतिरम्णी  
शतकरंरसकर्पूरस्यसेवकःसततम् ॥ ३० ॥ भा० प्र० ।

अशुद्धरसकर्पूरदोषाः—सेवितोऽविधिनाकुष्ठं सन्धिवा  
तं कफाधिकम् ॥ रसकर्पूरकंकुर्यात्तस्माद्यत्नेन से  
वयेत् ॥ ३१ ॥ ग्रं० त० ।

१५ शुद्धगन्धकगुणाः—शुद्धोगन्धोहरेद्रोगान्कुष्ठमृत्यु  
ज्वरादिकान् ॥ अग्निकारीमहानुष्णोवीर्यवृद्धि  
करोतिहि ॥ ३२ ॥ ग्रं० त० ।

अशुद्धगन्धकदोषाः—अशुद्धगन्धःकुरुतेचकुष्ठतापंभ्रमं  
पित्तरुजांतथैव ॥ रूपंसुखंवीर्यवलंनिहन्ति तस्माद्वि  
शुद्धोविनियोजनीयः ॥ ३३ ॥ ग्रं० त० ।

१६ शुद्धहिंगुलगुणाः—तिक्तंकषायंकटुहिंगुलस्स्यान्नेत्राम  
यघ्नंकफपित्तहारी ॥ हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाचक्षु  
हामवातौचगदंनिहन्ति ॥ ३४ ॥ ग्रं० त० ।

अशुद्धहिंगुलदोषाः—अशुद्धोदरदःकुर्यात्कुष्ठकैव्यंक्लमं  
भ्रमम् । मोहंचशोधयेत्तस्मात्सिद्धवैद्यस्तुहिङ्गुल  
म् ॥ ३५ ॥ ग्रं० त० ।

१३ शुद्धरससिंदूरकेगुण—शुद्धरससिंदूर कास, मदाग्नि, प्रमेह, रक्त-  
विचार मूत्ररुच्छ और ज्वर आदि अनेक रोगोंका पृथक् २ अनुपानसे नाश  
कमता है ॥ २८ ॥

अशुद्धरससिद्धरकेदोष—अशुद्धरससिद्धर अशुद्धपारेकेसमान रोगोको उत्पन्न करता है ॥ २९ ॥ यह सप्त प्रथातरमे लिखा है ।

१४ शुद्धरसकर्पूरगुण—लग्न चन्दन कस्तूरी और केशर सग शुद्ध रस-कर्पूर सेवन करनेसे घोर उपद्रवोसहित फिरग रोग दूर होता है और इसका सेवन करनेवाला पुष्ट, अग्निदीपन, पुष्टि, बल, वीर्य और शतस्त्रीरमणशक्तिको प्राप्त होता है ऐसा भावप्रकाशमे लिखा है ॥ ३० ॥

अशुद्धरसकर्पूरदोष—अशुद्धरसकर्पूरसेवनसे कुष्ठ, सधिनात ( गाठिया ) और कफवाहुल्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥

१५ शुद्धगंधकगुण—शुद्धगंधक कुष्ठ, मृत्यु, ज्वर आदि रोगनाश अभिप्रकाश और वीर्यवृद्धिको करता है ॥ ३२ ॥

अशुद्धगंधकदोष—अशुद्धगन्धक कुष्ठ, ताप, भ्रम और पित्तरोगको उत्पन्न और रूप सुख बल तथा वीर्यका नाश करता है ॥ ३३ ॥

१६ शुद्धहिगुलकेगुण—शुद्धहिगुल तोखा, कपैला और कट्या हे, नेत्र-रोग, कफरोग, पित्तरोग हृद्रोग, कुष्ठज्वर, कमठ ( पीछिया ) तापतिष्ठी और आगयान इन रोगोका नाश करता है ॥ ३४ ॥

अशुद्धहिगुलदोष—अशुद्धहिगुल नपुंसकता, परिश्रम भ्रम और मोह उत्पन्न करता है इसलिये इसे सदैव उत्तमप्रकारमे सोये ॥ ३५ ॥

१७ पक्षाभ्रकभस्मगुणाः—मृता कंकामवलप्रदं च विषं-  
मरुच्छ्वासभगन्दराख्यम् ॥ मेहभ्रमं पित्तकफं च कासं  
क्षयं निहन्त्येव यथानुपानात् ॥ ३६ ॥ अं० त० ।

अपक्षाभ्रकभस्मदोषाः—चन्द्रिकासहितपक्षाभ्रकं यदा जीवि  
तं क्षातिनाशयेत्तदा ॥ व्याघ्रोन्नज्वचोदरस्थि-  
तं वातनौवितनुते गदान्वहन् ॥ ३७ ॥ अं० त० ।

१८ पक्कहरितालभस्मगुणाः—अशीतिवातान्कफपित्त  
रोगान्कुष्ठंचमेहंचगुदामयांश्च ॥ निहन्तिगुंजार्द्ध  
मितंतुतालं षड्वल्लखंडेनसमंचयुक्तम् ॥ ३८ ॥

अपक्कहरितालभस्मदोषाः—अशुद्धतालंखलुपीतिवर्णसधू  
मकंवातचयंचपित्तम् ॥ पडुत्वकुष्ठंतनुतेचतेनदेहस्य  
नाशंप्रकरोतिसद्यः ॥ ३९ ॥

१९ शुद्धमनश्शिलागुणाः—मनश्शिलासर्वरसायनाख्या  
तिक्ताकटूष्णाकफवातहंत्री ॥ सत्त्वात्मिकाभूतवि  
षाग्निमांद्यंकंडूंचकासक्षयहारिणीच ॥ ४० ॥

अशुद्धमनःशिलादोषाः—मनश्शिलामंदवलंकरोतिजंतू  
न्ध्रुवंशोधनमन्तरेण ॥ मलस्यबन्धंकिलमूत्ररोगंस  
शर्करंकृच्छ्रगदंचकुर्यात् ॥ ४१ ॥

२० शुद्धसौवीरगुणाः—सौवीरंग्राहिमधुरंचक्षुष्यंकफवा-  
तजित् ॥ सिध्मक्षयास्त्रनुच्छीतंस्रोतोअनमपीदृशम्  
॥ ४२ ॥ म० प० नि० ।

अशुद्धसौवीरदोषाः—अशुद्धसौवीरादेहेनेत्रेचभवन्तिरो  
गाः ॥ ४३ ॥

१७ अभ्रकके पक्केभस्मके गुण—अधकका पक्का भस्म काम और  
बलप्रद तथा विष, वातश्वास, भगदर, प्रमेह, धम, पित्त, कफ, कास और  
क्षयी नाशकहै ॥ ३६ ॥

अभ्रकके कच्चेभस्मके दोष—अधकका कच्चा चमकदार भस्म खानेसे  
बोटेही काठमें अनेक रोग शरीरमें उपन्न होतेहैं और प्राणहानि हो तोभी कोई  
आश्चर्य नहीं जैसे मिहका केरा (वाल) पेटमें जानेसे अनेक रोग होजातेहैं  
वैने ॥ ३७ ॥



१८ हरितालकेकैभस्मकेगुण—हरितालकापक्वाभस्म ८० प्रकारके वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, कुष्ठ, प्रमेह और गुदाके रोगोका नाश करताहै इसकी आधी चिरमिठी मात्रा ६ रती मिश्री सग खाना चाहिये ॥ ३८ ॥

हरितालकेकैभस्मकेदोष—पीत अग्निपर डालनेसे जिससे धूवा निकले ऐसा हरितालका कच्चा भस्म वातव्याधि, पित्त पगुलरोग और कुष्ठको उत्पन्न करता तथा देहका नाश करता है ॥ ३९ ॥

१९ शुद्धमनशिलके गुण—शुद्धमनशिल—सर्व रसायनमे, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण और सत्त्व ( सत ) रूपहै यह कफ, वात, भूत, विष, अग्निमाद्य, खुजली, कास और क्षयको दूर करताहै ॥ ४० ॥

अशुद्धमनशिलके दोष—अशुद्धमनशिल—अल्पवृद्ध, कृमि, मलावरोध, मूत्ररोग और पथरी सहित मूत्रवृच्छको उत्पन्न करता है ॥ ४१ ॥

२० शुद्धकालेसुरमेकेगुण—शुद्ध काला सुरमा ( सोबीर ) प्राही, मयुर, ठंडा नेत्ररोगहारक, कफ, वात, सिरिया ( विभूति ) क्षयी और रक्तज रोग नाशकहै, इसी प्रकार जोतोजनभी होताहै ॥ ४२ ॥

अशुद्धकालेसुरमेकेदोष—अशुद्धकाले सुरमेमे देहमे और नेत्रमे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ४३ ॥

२१ शुद्धखर्परगुणाः—त्रिदोषजित्पित्तकफातिसारक्षयज्वरघ्नोरसकोतिरुक्षः ॥ नेत्रामयानांप्रकारोतिनाशं स्याद्रंजकःकामलनाशनश्च ॥ ४४ ॥ ग्रं० त० ।

अशुद्धखर्परदोषाः—अशुद्धःखर्परःकुर्याद्वांतिभ्रांतिविशेषतः ॥ तस्माच्छोध्यःप्रयत्नेनयावद्भ्रान्तिविवर्जितः ॥ ४५ ॥ ग्रं० त० ।

२२ पद्मवज्रभस्मगुणाः—आयुः प्रदंसद्गुणदंचवृष्यंदोषत्रयप्रशमनंसफलाभयघ्नमासृतेन्द्रवंधवधसद्गुणदंप्रदी संमृत्युंजयेत्तदमृतोपममेववज्रम् ॥ ४६ ॥ ग्रं० त० ।

अशुद्धापक्वज्वभस्मदोषाः—पीडांविधनेपिविधानराणां  
कुष्ठक्षयंपांडुगदंचदुष्टम् ॥ हृत्पाद्वपीडांकुरुतेतिदु  
स्सहामशुद्धवज्रंगुरुवात्महंत्यजेत् ॥ ४७ ॥ ग्रं०त० ।

२३ पक्ववैक्रांतभस्मगुणाः—वैक्रातवज्रसदृशोदेहलोहक  
रोमतः ॥ विषघ्नोरसराजस्य ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत्  
॥ ४८ ॥ ग्रं०त० ।

अशुद्धपक्ववैक्रांतभस्मदोषाः—अशुद्धवैक्रांतोवज्रवदो  
षकर्ताभवति ॥ ४९ ॥

२४ शुद्धप्रवालभस्मगुणाः—प्रवालंमधुरंसांस्लंकफपि  
त्तार्तिदोषनुत् ॥ वीर्यकांतिकरंस्त्रीणांघृतेसंगलदा  
यकम् ॥ ५० ॥

क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥ विषभूतादि  
शमनं विद्रुमं नेत्ररोगहृत् ॥ ५१ ॥

अशुद्धप्रवालदोषाः—अशुद्धप्रवालभक्षणान्धवन्ति रोगा  
ह्यनेकाः ॥ ५२ ॥

२१ शुद्धखपरियाके गुण—शुद्ध खपरिया सुखादे त्रिदोष, पित्त, कफ,  
अतिसार, क्षय, ज्वर, नेत्ररोग कामला नाशक और वातिविकाशक है ॥ ४४ ॥

अशुद्धखपरियाके दोष—अशुद्ध खपरिया वाति वातिकारक हो-है इस  
द्विपे वातिकारक दोष दूर होनपर्यन्त इसका शोवन करना चाहिये ॥ ४५ ॥

२२ ह्रींके पक्वभस्मके गुण—ह्रींके पक्वा भस्म आयु मरुण, क. जीर्ण  
कारक, त्रिदोष सक्त रोग तथा मृत्युहारक, पारद मारक और अमृत समान  
गुणकारक है ॥ ४६ ॥

अशुद्ध हीरेके तथा कच्चे भस्मके दोष—अशुद्ध हीरा तथा इसका कच्चा भस्म मनुष्योंके अनेक प्रकारकी पीडा कुष्ठ, क्षयी, पांडु, हृत्पीडा पार्श्वपीडा और मृत्युभी कर देता है ॥ ४७ ॥

२३ वैक्रातके क्लेशभस्मके गुण—वैक्रातका पक्का भस्म हीरेके भस्मसमान गुणकर्ता देह दृढ करनेवाला और पारेका विष, ज्वर, कुष्ठ, तथा क्षयी इनका नाश करनेवाला है ॥ ४८ ॥

वैक्रातके कच्चे भस्मके दोष—वैक्रातका कच्चा भस्म हीरेके भस्म समान दोषकाग्न है ॥ ४९ ॥

२४ शुद्धमृगेके गुण—शुद्धमृगा मधुर और कुछ अम्ल है कफ पित्तजन्य पीडा क्षयी रक्तपित्त, काश विष, भूतवाधा और नेत्ररोग इनको दूर करनेहारा त्रिविधोके मंगलदायक और दीपन तथा पाचन है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अशुद्धमृगेके दोष—भापानु०—अशुद्धमृगेके मक्षणसे अनेकरोग होते हैं ५२

२५ विषस्य गुणानुगुणप्रदर्शनम्—विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विफाशि च ॥ आग्नेयं वातकफहृद्रोगवाहि मदावहम् ॥ ५३ ॥ तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायिरसायनम् ॥ पथ्याशिनां त्रिदोषघ्नं वृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ ५४ ॥ ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे तस्य हीना विशोधनात् ॥

तस्माद्विषं प्रयोगेऽशुद्धे तस्य हीना विशोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ५५ ॥ अंत०

२५ विषके दोष और गुणोंका दर्शाव—अशुद्ध विष प्राण हर्ता सर्व देहमें प्राप्त होकर पश्चात् पचनेवाला आजको सुग्रावर सधियोंको टीला कर देनेवाला अन्यन्त उष्ण, वात, वाफहारक, देहमें रसजानेवाला और मदकारक है ॥ ५३ ॥ और यही शुद्ध विष युक्तिसे सेवित प्राण, यत्र, वीर्य, बुद्धिदायक, त्रिदोषनाशक और पथ्यसे खानेवालेका वीर्यवर्द्धक है ॥ ५४ ॥ जो अशुद्ध विषमें दुर्गुण (दोष) वर्णन किए हैं वे सन्म दोष शोधनमें दूर हो जाते हैं इसलिये विषको शुद्ध करके ही प्रयोग में लाना चाहिये ॥ ५५ ॥ यह सब पश्चात्तरमें लिखा है.

इति श्रीपद्मजितशस्त्रारण्यविरचितेनाभानुवादपितृपितेऽनुपानदर्पणे सुवर्णा  
दर्शनाप्रकाशकमनोगुणागुणितिकृत्यनेष्टन प्रमोद ॥ ८ ॥

अथातोऽपक्वधात्वादोषशान्तिविवेकं

व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

- १ अपक्वस्वर्णदोषशांतिः—अभयासितयाभुक्तात्रिदिनं  
नृभिरंगजे॥हेमदोषहरीख्यातासत्यंसत्यंनसंशयः२
- २ अपक्वरौप्यदोषशांतिः—शर्करामधुसंयुक्तासेवयेद्यो  
दिनत्रयम्॥ अपक्वरौप्यदोषेणविमुक्तःसुखमश्नुते३
- ३ अपक्वताम्रदोषशांतिः—मुनिव्रीहिसितापानंवाधा  
न्याकंसिताश्वकैः ॥ ताम्रदोषमशेषं वैपिवन्हन्यादि  
नत्रयैः ॥ ४ ॥
- ४ अपक्ववंगदोषशांतिः—मेषशृंगीसितायुक्तांयस्सेवति  
दिनत्रयम्॥वंगदोषविमुक्तोसौसुखंजीवतिमानवः५
- ५ अपक्वयशददोषशांतिः—वलाभयांसितायुक्तांसेवये  
द्योदिनत्रयम् ॥ यशदस्यविकारोस्यनाशमायाति  
नान्यथा ॥ ६ ॥
- ६ अपक्वनागदोषशांतिः—हेमाहरीतकींसेवेत्सितायुक्तां  
दिनत्रयम्॥अपक्वनागदोषेणविमुक्तस्सुखमेधते ७॥
- ७ अपक्वलोहदोषशांतिः—मुनिरसपिष्टविडंगंमुनिरस  
लीढंचिरस्थितेवर्म्मै ॥ द्रावयतिलोहदोषान्वाह्निर्नव  
नीतपिण्डमिव ॥ ८ ॥
- ८ अपक्वलोहजन्यकीटशांतिः—आरग्वधस्यमज्जातुरेच  
नंकीटशांतये ॥ भवेदप्यतिमारश्चपीत्वादुग्धंतुत-  
त्यजेत् ॥ ९ ॥

अथ कच्चीभ्रातु आदिके खानेसे जो विकार होते हैं उनके शान्तिका विवेक  
पूर्ण करेंगे ॥ १ ॥

अपक्वसुवर्णदोषशान्ति-भाषानुवादः- हर्ड और मिश्रीको तीन दिन खानेसे  
अशुद्ध ( कच्चे ) सुवर्णभस्म सेवनसे जो विकार हुए हो वे सब शान्त होयें ॥ २ ॥

अपक्वरौप्यदोषशान्ति-मिश्री और सहतका तीन दिन सेवनकरनेसे  
चौंटीके कच्चे भस्मजन्य विकार शान्त होयें ॥ ३ ॥

३ अपक्वताम्रदोषशान्ति-मुनिव्रीहि ( साव्वा ) अथवा धनियेको मिश्री  
सग मिलाकर जलके साथ ३ दिनतक पानकरे तो कच्चे ताम्रजनित दोष  
शान्त ( दूर ) होय ॥ ४ ॥

अपक्ववंगदोषशान्ति-मेढासिंगीको मिश्री सग तीन दिनतक सेवनकरने  
से कच्चे वंग ( कभील ) विकार शान्त होवे ॥ ५ ॥

५ अपक्वयशददोषशान्ति-छोटी हर्ड और मिश्रीका तीन दिन पर्यन्त  
सेवन करनेसे कच्चे जस्त भस्मके खानेसे जो विकार हुए हैं वे समस्त शान्त  
होयें ॥ ६ ॥

६ अपक्वनागदोषशान्ति-चोख और हर्ड मिश्री सग ३ दिनपर्यन्त सेवनकरनेसे  
अपक्व नाग ( सीसा ) विकार शान्त होय ॥ ७ ॥

७ अपक्वलौहदोषशान्ति-अगस्त्यवृक्षके रसमें वायविडगके चूर्णको मिला  
कर सेवन करे और बहुत कालतक धूपमें बैठे तो कच्चे लौहभस्म जन्य दोष  
( विकार ) दूर होयें जैसे अग्नि माखनको पिघला देती है वैसी ही यह उपचार अपक्व  
लौहविकारको पिघलाकर जडसे दूर कर देता है ॥ ८ ॥

८ अपक्वलौहजन्यकीटशान्ति-अपक्व ( कच्चे ) लौह भस्मसे यदि पेटमें कृमि  
( कीड़े ) पट जायें तो अमलनासका गूदा खावे जिसमें रेचन ( दस्त ) होनेसे समस्त  
पेटके कीड़े बाहर निकल जायेंगे पश्चात् दूधको पानकरे और उस अपक्व लौह-  
भस्म सेवनका त्यागनकर देवे ॥ ९ ॥

९ अपक्वस्वर्णमाक्षिकदोषशान्तिः-कुलत्थस्य कषायेण मा  
क्षिविकृतिशान्तिकृत् ॥ तथैव ढाडिमं त्वग्वैदेयं दे  
हसुखार्थिने ॥ १० ॥ अं० त० ॥

१० अपक्वरौप्यमाक्षिकदोषशांतिः--विकारोयदिजायेत  
विमलायानिषेवणात् ॥ शर्करासहिताभक्ष्यामेष  
शृंगीदिनत्रयम् ॥ ११ ॥ ग्रं. त. ॥

११ अपक्तुत्थदोषशांतिः--जंवीररसमादाययःपिवेच्चदि  
नत्रयम् ॥ तस्यतुत्थकशांतिःस्यात्तद्वल्लाजाजवारि  
णा ॥ १२ ॥ ग्रं. त. ।

१२ अशुद्धशिलाजीतदोषशांतिः--मरीचंघृतसंयुक्तंसेवये  
दिनसप्तकम् ॥ शिलाजतुभवंदोषशान्तिमाप्नोति  
निश्चितम् ॥ १३ ॥ ग्रं० त. ।

९ कच्चीसोनामक्खीकेदोषोक्तीशांति-भाषानुवादः-कुलथीके काटेसे अथवा  
अनारकी छालके कायसे कच्ची सोनामक्खीके विकार शात होय ॥ १० ॥

१० कच्चीरूपामक्खीकेदोषोक्तीशांति-मिश्री सहित मेढासिंगीका चूर्ण ३  
दिन पानेसे कच्ची रूपामक्खीके विकार शात होय ॥ ११ ॥

११ कच्चेनीलायथेकेदोषोक्तीशांति-३दिनपर्यन्त जंवीरके रस अथवा लाही  
( धानकीपील ) के जल पानेसे कच्चे नीलायथेजन्य विकारोक्ती शाति होय १२ ॥

१२ अशुद्धशिलाजीतकेदोषोक्तीशांति-काली मिर्च और घृत ७ दिनपर्यन्त  
सेवन करनेसे अशुद्ध शिलाजीतके भक्षणमे जो विकार दृष्ट हो उनही शानि  
होय ॥ १३ ॥

१३ अशुद्धापक्वपारददोषशांतिः--विकारायदिजायन्तेपा  
रदान्मलसंयुतात् ॥ गन्धकंसेवयेन्नीमान्पाचितंवि  
धिपूर्वकम् ॥ १४ ॥ ग्रं० त० ।

१४ अशुद्धरससिंदूरदोषशांतिः-रससिंदूरशान्तयेघृतम  
रिचरजःपिवेत्सप्तदिनम् ॥ १५ ॥

- १५ अशुद्धरसकर्पूरदोषशांतिः-सहिषीशकृतोनीरं वान्या  
कंवासितायुतम् ॥ पिवेन्नीरेणमुक्तःस्याद्रसकर्पूरजे  
र्गदैः ॥ १६ ॥ ग्रं. त. ।
- १६ अशुद्धगंधकदोषशांतिः-विकारोयदिजायेतगन्धका  
च्चेत्तदापिवेत् ॥ गोघृतेनान्वितंक्षीरंसुखीस्यात्स-  
चमानुषः ॥ १७ ॥ ग्रं० त. ।
- १७ अशुद्धहिङ्गुलदोषशांतिः-उत्पद्यतेयदाव्याधिर्दरद-  
स्यनिपेवणात् ॥ तदासूतकवत्सर्वाकुर्व्याच्छान्ति  
प्रतिक्रिया ॥ १८ ॥ ग्रं. त. ।
- १८ अपक्वाभ्रकभस्मदोषशांतिः-उमाफलंवनपिष्ट्वासेवये  
द्योदिनत्रयम् ॥ अशुद्धाभ्रकदोषेणविमुक्तस्सुखमे  
धते ॥ १९ ॥ ग्रं. त. ।
- १९ अपक्वहरितालभस्मदोषशांतिः-अजाजीशर्करायुक्तं  
सेवयेद्योदिनत्रयम् ॥ विकृतिस्तालजाहन्याद्यथा  
दारिद्र्यमुद्यमे ॥ २० ॥ ग्रं. त. ।
- २० अशुद्धमनश्शिलादोषशांतिः-गोक्षीरंमाक्षिकयुतं  
पिवतेद्योदिनत्रयम् ॥ कुनटीतस्यदेहेचविकारंन  
करोतिहि ॥ २१ ॥ ग्रं. त. ।
- २१ अशुद्धसौवीरदोषशांतिः-त्रिफलासेवनान्नवतिसौ  
वीरजनितविकाराणांशांतिः ॥ २२ ॥

२२ अशुद्धस्वर्परदोषशांतिः-रसकनिषेवणतोयदिरोगाः  
प्रादुर्भवन्तिमनुजानाम् ॥ तेनाशमाप्नुवन्तिपीतं  
गोमूत्रसप्ताहम् ॥ २३ ॥ ग्रं. त. ।

१३ अशुद्धतथाकच्चेपारेकेदोषोकीशांति-शुद्ध गन्धकके सेवनसे अशुद्ध तथा अपक्व ( कच्चे ) पारेसे जो विकार उत्पन्न हुएहों उनकी शांतिहोय ॥ १४ ॥

१४ अशुद्धरससिंदूरकेदोषोकीशांति-७ दिनपर्यन्त काली मिरचका चूर्ण घीके सग सेवनकरनेसे अशुद्ध रससिंदूर खानेसे जो विकार उत्पन्न हुएहों उनकी शांति होय ॥ १५ ॥

१५ अशुद्धरसकर्पूरदोषशांति-भैसके गोबरका रस अथवा मिश्री सहित वनिर्या जलसे पान करेतो अशुद्ध रसकर्पूर जन्य विकार शांत होय ॥ १६ ॥

१६ अशुद्धगंधकटोपशांति-गोघृत सहित दूध पीनेसे अशुद्ध गन्धकके विकार शांत होय ॥ १७ ॥

१७ अशुद्धहिगुलकेदोषोकी शांति-अशुद्ध पारेके विकारोकी शांतिका जो उपाय पूर्व कह चुकेहैं वही अशुद्ध हिगुलके विकारोकी शांतिका उपाय जानो ॥ १८ ॥

१८ कच्चेअभ्रककेदोषोकीशांति-आम्लेको पानीमें पीसके टंडाईके समान छानकर ३ दिनतक पीवैतो अशुद्ध अभ्रकजन्य दोष ( विकार ) शांत होय ॥ १९ ॥

१९ हरितालकेकच्चेभस्मकेदोषोकीशांति-जीरा और मिश्री मिलाकर ३ दिनतक सेवन करेतो अशुद्ध ( कच्चे ) हरितालके विकार शांत होय ॥ २० ॥

२० अशुद्धमनशिलकेदोषोकीशांति-३ दिनपर्यन्त गौके दूधमें सहित मिठाकर पीनेसे अशुद्ध मनशिलके विकार शांत होय ॥ २१ ॥

२१ अशुद्धसुरमेकेदोषोकीशांति-त्रिफला सेवन करनेसे अशुद्ध सुरमेके विकार शांत होय ॥ २२ ॥

२२ अशुद्धस्वपागियेकेदोषोकीशांति-७ दिनपर्यन्त गोमूत्र पीनेसे अशुद्ध स्वपागियेके दोष ( विकार ) शांत होय ॥ २३ ॥



३ अशुद्धापक्वज्वभस्मदोषशांतिः—सितामधुघृतैस्सा  
कंगोदुग्धं दिनसप्तकम् ॥ विधिना सेवितं हन्ति वज्रदो  
षं चिरोत्थितम् ॥ २४ ॥

२४ अशुद्धापक्वैक्रांतभस्मदोषशांतिः—शुद्धवैक्रांतभ  
स्मशांतिर्वज्रवज्ज्ञेया ॥ २५ ॥

२५ अशुद्धप्रवालदोषशांतिः—अशुद्धप्रवालमौक्तिकयोर  
पिविकारशांतिर्वज्रवज्ज्ञेया ॥ २६ ॥

२६ विषदोषशांतिः—अतिमात्रं यदा भुक्तं वमनं तस्य का  
रयेत् ॥ अजादुग्धं ददेत्तावद्यावद्वांतिर्न जायते ॥  
॥ २७ ॥ ग्रं० त० ।

अजादुग्धं यदा कोष्ठे स्थिरी भवति देहिनः ॥ विषवे-  
गंततो जीर्णजानीयात्कुशलो भिषक् ॥ २८ ॥ ग्रं० त० ।

२७ जैपालदोषशांतिः—धान्याकंसितया युक्तं दधिना स  
ह्यः पिवेत् ॥ देहे जैपालजो व्याधिर्नाशमाप्नोति नि  
श्चितम् ॥ २९ ॥ ग्रं० त० ।

२३ अशुद्धतथा कञ्च हीरेके दोषां कीशांति—७ दिन तक मिश्री सहित आर  
त्रां महित गोमूत्र दूध पीने से अशुद्ध तथा अपक्व ( कच्चे ) हीरेके समस्त विकार  
शांत होय ॥ २४ ॥

२४ अशुद्धवैक्रांतदोषशान्ति—हीरेके विकारशांति उपाय से वैक्रांति विका-  
रकी जाती होती है ॥ २५ ॥

२५ अशुद्धप्रवालदोषशान्ति—अशुद्ध मृग और मोतीके विकार  
शान्ति का उपचार भी अशुद्ध हीरेके विकार शांति के उपचार समान जानो २६ ॥

२६ विषदोषशांति-वृक्षनाग आदि अशुद्ध मित्र अधिक तापमें आजाये तो उसे वमन ( डलवाई ) करावे और बकरीके दूधका मित्र न जावे तब वह दूध पचकर वमन न हो तब जानलो कि, विष दोष जातहुआ ॥२७॥ २८॥

२७ अशुद्धजमालगोटकेदोषोक्तीशांति-बनियाँ और मित्रो दर्हामें मिलाकर खिलानेसे अशुद्ध जमालगोटके समस्त विकार शांत होयें ॥ २९॥  
ये सब उपाय ग्रथान्तरमें लिखेहैं

### गीतिः ।

अङ्गावध्यङ्गाव्जेव्देचैत्रेशुभ्रेचरामजन्मनिथौ ॥  
ज्ञारसरामश्चक्रेऽनुपानदर्पणमसुंकुजेपूर्णम् ॥ ३० ॥  
इति श्रीमत्पण्डितज्ञारसरामविरचितेभाषानुवादविभूषितेऽनुपानदर्पणेऽ  
पञ्चगालादिदोषशांतिविवेककथनेनयम प्रमोदः ॥ ९ ॥

### समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

इमं ग्रंथकर्ताका जन्मसंवत्तरादि ।  
श्रीमद्विक्रमवत्सरेवसुधरांकेन्दुवभूदुद्भव  
स्तातःश्रीवलदेवसूरिरमलेवंशोदधीचःप्रभोः ॥  
चेपेविश्वतिथौविषोसितदलेसार्द्धाष्टमाड्यामलौ  
मेऽतोज्ञारसरामनामजगतिश्रीकृष्ण उनाभापम् ॥१॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना -

खेमराज श्रीकृष्ण ५ ७,

“ श्रीवेङ्कटेश्वर ” स्थान, त्रिपुरा, बंगाल.



अथ हिङ्गुलानुपानानि ।

वामावश्यकरस्तथामयहरस्संमारितोहिङ्गुलःक-  
न्दर्पत्रिसुगंधिनाशुतनुतेवह्निम्बलंसन्मतिम् ॥ ता-  
म्बूलेनसखेनिहन्तिकसनंश्वासंसमस्ताज्ज्वरान्दे-  
योऽन्येषुविचार्यसद्गुणयुतैरोगेषुवैद्यैर्धिया ॥ १०४ ॥

भाषानुवादः—अत्र हिङ्गुलके अनुपान वर्णन करते हैं। स्त्रीवशका-  
सकलरोगहारक, हिङ्गुलभस्म त्रिसुगवि सग देनेसे कामको, अग्निको, बल-  
बुद्धिको बढ़ाता है और तांबूल सग देनेसे हे मित्र कास, श्वास और स-  
ज्वरोंका नाश करता है इनसे व्यतिरिक्त रोगोपर अपना बुद्धिसे सदैवोंने नि-  
कर देना चाहिये ॥ १०४ ॥ यह श्लोक हमने अनेक वैद्यक ग्रंथाशयानु-  
वनाकर लिखा है।

अथाभ्रकानुपानानि ।

शुद्धाभ्रननुवल्लकद्वयमितंकृष्णामधुभ्यांयुतंमेहंश्वा-  
सविषंचकुष्ठमतुलंवातंचपित्तंकफम् ॥ कासक्षीण-  
क्षनक्षयंग्रहणिकांपाण्डुंभ्रमंकामलांगुल्माद्यंचतथा-  
नुपानविधिनामृत्युंचजेजीयते ॥ १०५ ॥ अन्य-  
च्च ॥ अभ्रकंचनिशात्यक्तेपिप्पलीमधुनासह ॥  
विंशतिंचप्रमेहानानाशयेन्नात्रसंशयः ॥ १०६ ॥  
अभ्रकंहेमसंयुक्तंक्षयरोगावनाशनम् ॥ रौप्यहैमा-  
भ्रकंचैवधातुवृद्धिकरंपरम् ॥ १०७ ॥ गोक्षीरशर्क-  
रायुक्तंपित्तरोगविनाशनम् ॥ शैलजंपिप्पलीचूर्ण-  
माक्षिकैस्सर्वमेहहृत् ॥ १०८ ॥ अभयागुडसंयुक्तं  
वातरक्तं नियच्छति ॥ स्वर्णयुक्तंक्षयंहन्तिधातुवृ-

द्विकरोतिच ॥ रक्तपित्तनिहन्त्याशुचैलाशर्करया  
 सह ॥ १०९ ॥ अन्यच्च ॥ सितामृतासत्त्वयुतमेहं ना  
 शयतेध्रुवम् ॥ वरामधुधृतैश्शार्कराशुचैश्शर्करासहितं  
 हृत् ॥ ११० ॥ एलागोक्षुरभूधात्रीशर्करासहितं  
 तथा ॥ गोदुग्धेनयुतंहन्तिमूत्रकृच्छ्रं प्रमेहकम् ॥  
 ॥ १११ ॥ त्रिषुगन्धवराव्योषशर्करानागकेसरम् ॥  
 माक्षिकेणनिहन्त्याशु पाण्डुरोगंक्षयंज्वरम् ११२  
 अन्यच्च ॥ वल्लंव्योषसमन्वितंघृतयुतंवल्लोन्मितं-  
 सेवितंदिव्याभ्रंक्षयपाण्डुसंग्रहणिकाशूलंचकुष्ठा-  
 मयम् ॥ सर्वश्वासगदंप्रमेहमरुचिकासामयंदु-  
 र्द्धरंसन्दाग्निजठरव्यथांपरिहरेच्छोषामयान्निश्चि-  
 तम् ॥ ११३ ॥

भाषानुवादः—अब अधकफे अनुपान वर्णन करतेहैं पीपल और सहतसग  
 १ रत्तीसे लेकर ६ रत्ती पर्यन्त शुद्ध अधकफसम भक्षण करनेसे प्रमेह, श्वास,  
 विष, कुष्ठ, वात, पित्त, कफ, खाँसी, क्षीणता, क्षयी, व्रण, सग्रहणी, पांडु,  
 धम, कामला, और गुल्म, ये रोग दूर होयें विशेषतो क्या, पर यदि उक्तानुपान  
 विधिसे अधक सेवन करनेवाला मनुष्य मृत्युकोभी जीतताहै ॥ १०९ ॥ प्रातः  
 काल पीपल और सहतसग अधकभगम सेवनमे २० प्रकारके प्रमेह दूर होयें  
 ॥ १०६ ॥ सोनेके पत्ती ( वक्की ) के सग क्षयीका नाश करताहै—चादी  
 ॥ सोनाकी भस्मसग अधकभस्म खानेसे धातुवृद्धि होय ॥ १०७ ॥ गोदुग्ध और  
 ॥ मिथ्रीसग पित्तरोगका, शिलाजीत, पीपल, सुवर्णमाक्षिक भस्म इनके सग सत्र  
 ॥ प्रमेहोका ॥ १०८ ॥ हड्ड और गुडके सग वातरक्तका—और सोनेके वक्कीके  
 ॥ सग अधकभस्म क्षयीका नाश करताहै तथा धातुको बढाताहै तथा इलायची  
 ॥ और शर्करासग रक्तपित्तका नाश करताहै ॥ १०९ ॥ मिथ्री और गुरचसत्त्वके  
 ॥ तृप्तसग अधकभस्म प्रमेहको दूर करताहै—त्रिफला, सहत और घृतसग वीर्यको

ब्रटाताहे और नेत्ररोगको हटाताहे ॥ ११० ॥ इलायची, गोखरू, भूआवला, मिश्री, और गौके दूध सग अभ्रकभस्म मूत्रकृच्छ्र और प्रमेहका नाश करताहे ॥ १११ ॥ त्रिसुगंध, तज, पत्रज, इलायची, त्रिफला, त्रिकटु, मिश्री और नागकेशर इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसके सग अभ्रकभस्म खावे तो पाडु, क्षयी और ज्वर ये सब दूर होयें ॥ ११२ ॥ इसीप्रकार वायविडग, सोंठ, मिरच, पीपल, और गौका बी इनके साथ ३ रत्ती अभ्रकभस्म भक्षण करे तो, क्षयी, पाडु, सप्रहणी, शूल, कुष्ठ, समस्त श्वास, प्रमेह, अरुची, कास, मदाग्नि, उदरव्याधि और शोषरोग ये सब दूर होयें यह निश्चय जानिये ॥ ११३ ॥

अथ हरितालानुपानानि ।

अनुपानान्यनेकानियथायोगंप्रयोजयेत् ॥ गुडू-  
च्यादिकषायेणगदानेतान्व्यपोहति ॥ ११४ ॥ सौ-  
पद्रवंवातरक्तंकुष्ठान्यष्टादशापिवा ॥ सर्वरक्तवि-  
कारेषुदेयमात्रहरिद्रया ॥ ११५ ॥ सुहालाहल  
जीराभ्यामपस्मारहरंपरम् ॥ समुद्रफलयोगेनज-  
लोदरविनाशनः ॥ ११६ ॥ देवदालीरसैर्युक्तंभगं  
दरहरंपरम् ॥ फिरंगदोषजंरोगंजातंहन्तिसुदुस्तर-  
म् ॥ ११७ ॥ मंजिष्ठादिकषायेणकुष्ठमष्टादशंज-  
येत् ॥ त्रिफलाशर्करायुक्तंपाण्डुरोगंजयत्यसौ ॥  
॥ ११८ ॥ शुण्ठीचूर्णयुतंहन्यादामवातंसुदुर्जयम् ॥  
सौवर्णभस्मयोगेनरक्तपित्तविकारनुत् ॥ ११९ ॥  
तन्दुलीयरसैश्शकंज्वरमष्टविधंजयेत् ॥ एवंस-  
र्वेपुरोगेषुस्वबुद्ध्याकल्पयेन्निषक् ॥ १२० ॥

भाषानुवादः—अत्र हरितालभस्मके अनुपान वर्णन करतेहैं. हरितालभ  
रोगानुसार यथायोग्य अनुपान सग देना चाहिये. गुडूच्यादि काथ सग हरित

भस्म ॥ ११४ ॥ उपद्रव सहित वातरक्तका तथा १८ प्रकारके कुष्ठका नाश करता है, अविद्या हरिद्रासग सब रुधिरविकारमे हरितालभस्म देना चाहिये ॥ ११५ ॥ विष और जीरेके सग अपस्सार ( मृगी ) का समुद्रफलसग जलोदर ( जिसे लोकमे जलधर ) कहतेहैं उसका ॥ ११६ ॥ देवदालीके रससग भगदरका तथा फिरगवातका ॥ ११७ ॥ मर्जीयादिक्वाथसग १८ प्रकारके कुष्ठोंका त्रिफला और मिश्री सग पादुरोगका ॥ ११८ ॥ सोठके चूर्णसग आमवातका—सुवर्णभस्मसग रक्तपित्तजन्य विकारका ॥ ११९ ॥ और चौलाईके रससग देनेसे हरितालभस्म ८ प्रकारके ज्वरोका नाश करताहैं इसीप्रकार सबरोगोमे वैद्य अपनी बुद्धिसे अनुपानोंकी कल्पना करके उनके साथ हरिताल भस्म देवे ॥ १२० ॥

अथ मनश्शिलानुपानानि ।

मनश्शिलासुमाक्षिकेण शुक्रमाशुपिच्छिदं निहन्ति  
वासरान्ध्यमामयं सखेन संशयः ॥ कणामरीचचूर्णं  
संयुताशिलां वुनांजिता त्रिदोषजं ज्वरं व्यथाञ्च भूत  
संनिवेशजाम् ॥ १२१ ॥ दध्यं वुनाहन्ति तथा  
वुदंशिलाश्वासं च भाङ्गीकटुभद्रसंयुता ॥ वासार  
सव्योषयुता जयेच्छिला कासं वलासं कनकेन वै वि  
पम् ॥ १२२ ॥ मत्कृतिरियम् ॥

भाषानुवादः—भव मन शिला ( मनश्शिल ) के अनुपान वर्णन करतेहैं हे मित्र ! शुद्ध मनश्शिलाको सहतसग नेत्रमें लगानेसे, नेत्रमें की फूली, तिमिर, (दिनोधि) और नेत्रका चिपकना ये सब दूर होतेहैं तथा छोटीपीपल, और काली मिरचके चूर्ण सग शुद्ध मन शिलाका जलसे नेत्रमे आजनेसे त्रिदोषज ( सान्निपात ) ज्वर और भूतवाधा दूरक्षाय ॥ १२१ ॥ दर्हाके पानीसग अर्बुदरोगका, नारंगी और सोंठसग श्वासका, अडूसेके रस और त्रिकटुसग खांसी तथा कफका और सुवर्णसग विषका शुद्धमन शिला नाश करतीहै शेषरोगोंपर वैद्य अपनी बुद्धिसे अनुपान विचारके देवे यह दोनों श्लोक गैने अनेक वैद्यकग्रन्थोंके आश्रयसे बनायेहैं ॥ १२२ ॥

अथ सौवीगानुपानानि ।

नीलाजनंशुंठ्यभयागुडैःकफंपित्तंनिहन्त्याज्यासि  
तायुतंध्रुवम् ॥ वायुंकणाविश्वमरीचमाक्षिकैर्देयं  
धियान्येषुगदेषुपण्डितैः ॥१२३॥ मत्कृतिरियम् ॥

भाषानुवादः—अब सुरमेके अनुपान वर्णन करतेहैं शुद्धसुरमा नेत्रोंमें लगा-  
नेसे नेत्रोंके अनेक रोगोंको दूर करताहै यह बात तो प्रसिद्धहीहै पर, सोंठ, हड्ड  
और गुडसग कफको घी शकरसग पित्तको छोटीपीपर, सोंठ, कालीमिरच,  
और सहतसग वादीको शुद्धसुरमा दूर करताहै। उपरंगोंपर बुद्धिमानोंने अपनी  
बुद्धिसे अनुपान विचारकर देना चाहिये यह श्लोकभी मेरा बनायाहुआ है १२३

अथ खर्पगानुपानानि ।

तद्भस्ममृतकांतेनसमेनसहयोजयेत् ॥ अष्टगुंजा  
मितंचूर्णत्रिफलाकाथसंयुतम् ॥१२४॥ कांतपात्र  
स्थितंरात्रौतिलजप्रतिवापकम् ॥ निषेवितंनिहन्त्या  
शुमधुमेहमपिध्रुवम् ॥ १२५ ॥ पित्तक्षयंचपाण्डुं  
चश्वयथुंगुल्ममेवच ॥ रक्तगुल्मश्चनारीणांप्रदरं  
सोमरोगकम् ॥ १२६ ॥ योनिरोगानशेषांश्चविष  
मांश्चज्वरानपि ॥ रजःशूलंचश्वासश्चहिधिना  
श्वविशेतः ॥ १२७ ॥

भाषानुवादः—अब खर्परभस्मके अनुपान वर्णन करतेहैं खपरियेकी भस्मके  
समान कातलोहकी भस्म लेने और इन्द्रियोंको ८ गुजाप्रमाण त्रिफलाके काथ  
॥ १२४ ॥ और तिलके तेलमें मिलाकर रात्रिभर कातिलोहके पात्रमें रहने दे  
पश्चात् इसका सेवन करे तो मधुमेहभी दूर होय ॥ १२५ ॥ तथा पित्तरोग,  
श्वयथुंगुल्ममेवच ॥ रक्तगुल्मश्चनारीणांप्रदरं  
सोमरोगकम् ॥ १२६ ॥ योनिरोगानशेषांश्चविष  
मांश्चज्वरानपि ॥ रजःशूलंचश्वासश्चहिधिना  
श्वविशेतः ॥ १२७ ॥

१ जिस लोहेके पात्रमें दूध भरके ओढ़ावे उसपात्रसे उफान खाकर दूध बाहर न  
निकलनेपावे उसे कातिलोहपात्र जानो ।



क्षयी, कामला, ( पांडु ) शोध वायगोला, रक्तगुल्म, स्त्रियोंका प्रदर, सोमरोग ॥ १२६ ॥ सर्व योनिरोग, विषमज्वर, रज.शूल, ( मासिक धर्महोनेके समय स्त्रियोंकी योनिमें शूल होताहै सो ) श्वास और टुचकी इन सब रोगोंको खापरियेका भस्म उक्त अनुपानसे दूर करताहै ॥ १२७ ॥ ऐसा प्रथातरमें लिखाहै.

अथ हीरकभस्मानुपानानि ।

• कुष्ठेखादिरत्वग्व्यथापवनजेषुकृशृंगवेरंमधुदेयंका  
सबलासश्वासविकृतौवासोषणात्वक्कणा ॥ पित्ते  
दाहसितासमंज्वरगणोच्छिन्नाजलेतिक्तकेवज्रंमा  
रितशुक्तभस्मगदहृद्योज्यंभिषग्युक्तिभिः ॥ १२८ ॥

भाषानुवादः—अब हीरेकी भस्मके अनुपान वर्णन करतेहैं खैरकी छालके सग कुष्ठरोगमें अदरक केसर और मधुमग वातव्याधि तथा वातरुक्तरोगमें अडूसा, कालीमिरच, दालचीनी और पीपलसग कास, श्वास, और बलास, ( कफ ) इन रोगोंमें मिश्रीके सग पित्त और दाहमें गिलोय और चिरायतेके सग समस्तज्वरमात्रमें हीरेके भस्मको देनेसे उक्तरोग नाश होय और इनसे व्यतिरिक्त रोगोंमें वैद्य अपनी बुद्धिसे अनुपान विचारके उसके साथ देवे ऐसा प्रथातरमें लिखाहै ॥ १२८ ॥

अथ वैक्रांतानुपानानि ।

भस्मत्वंसमुपागतोविकृतकोहेन्नामृतेनान्वितोपा  
दांशेनकलाज्यवल्लसहितोगुंजोन्मितस्सेवितः ॥  
यक्ष्माणंज्वरणञ्चपांडुगुदजंश्वासञ्चकासामयंदु-  
ष्टांवैग्रहणीसुरःक्षतमुखान् रोगाज्येदेहकृत् ॥ १२९ ॥

भाषानुवादः—अब वैक्रातके अनुपान वर्णन करतेहैं १ रती वैक्रातकी भस्मको उससे चतुर्थांश ( चौथाई रती ) सुवर्णभस्म, तथा पीपल, कालीमिरच

और मक्खनके साथ सेवन करे तो क्षयी, ज्वर, पाडु, अर्श, श्वास, कास, असाध्य सप्रहणी, उर क्षत (छातीकावाव) और मुखरोग ये सब दूर होयें ॥ १२९ ॥

अथ नीलवैक्रातभस्मानुपानानि ।

मूतभस्मार्द्धसंयुक्तं नीलवैक्रातभस्मकम् ॥ मृता-  
भ्रसत्त्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ १३० ॥ क्षौद्रा-  
ज्यसंयुतं प्रातर्गुआमात्रं निषेवितम् ॥ निहन्ति-  
सकलात्रोगान् दुर्जयानन्यभेषजैः ॥ त्रिसप्तदिवसै  
नृणां गंगां भङ्गपातकम् ॥ १३१ ॥

भाषानुवादः—पारेकी भस्म १ भाग नीलवैक्रातभस्म आधा भाग इन दोनोंके तुल्य अभ्रकभस्म ॥ १३० ॥ इन सबको मिलाकर खरल करे और उसमेंसे १ रत्तीमात्र लेकर सहत और घृतके सग प्रातः काल सेवन करे तो समस्त असाध्य रोगभी जो कि अन्य औषधिसे दूर नहीं होसके इससे दूर होयें, यदि उक्त-भस्मका २१ दिनपर्यन्त सेवन करे तो जैसे गंगाजल समस्त पातकोंको नाश कर-देता है तैसेही यह भस्म रोगोंका नाश करदेता है, ऐसा ग्रथांतरमे लिखा है ॥ १३१ ॥

अथ प्रवालभस्मानुपानानि ।

प्रवालभस्ममाक्षिकेण मागधीयुतेन वै निहन्ति मा-  
रुतंच कोष्ठगं ज्वरं पुरातनम् ॥ जयेत्सुषुक्कवारणीफ-  
लेन शुक्रसंक्षयं ददाति पुष्टिमाशु शर्कराज्यसंयुतं  
नृणाम् ॥ १३२ ॥ सितापयोयुतं निहन्ति पित्तमा-  
शुदारुणं सखे सुशालिजैर्हिमैश्च मूत्रकृच्छ्रमामय-  
म् ॥ चिकित्सकैर्विचार्य देयमामयेषु वैधियाखिले  
ष्वनेकतंत्रसम्मतं तेन मत्कृतिस्त्वयम् ॥ १३३ ॥

भाषानुवादः—अब प्रवालभस्मके अनुपान वर्णन करतेहैं छोटी पीपरी और सहतमग बोधगत वायुका तथा जीर्णरका और पत्रे केलेसग वायुक्षयका

प्रवालभस्म नाश करताहै, शंकरा और घृतसग प्रवालभस्म पुरुषोको पुष्टता देताहै ॥ १३२ ॥ मिश्री और दूधसग पित्तको और चावलोके हिमसग हे मित्र । भयकर मूत्रकृच्छ्रकोभी प्रवालभस्म दूर करताहै। शेषरोगोपर वैद्योने अपनी बुद्धिसे अनुपान विचारके प्रवालभस्म देना चाहिये, ये दोनों छोक मैंने अनेक तत्रोके सम्मतसे बनायेहैं ॥ १३३ ॥

अथ सामान्यतोऽखिलरसोपरसादीनांकति  
पथरोगेष्वनुपानान्याहग्रन्थकर्त्ता कविः  
श्रीलोलिवराजानुमतेनात्र ।

शूलेहिं गुघृतान्वितं मधुयुताकृष्णापुराणज्वरेवाते  
साज्यरसोनकः श्वसनकेशौद्रान्वितं व्यूषणम् ॥  
शीतेव्याललतादलंसमरिचं मेहेवरासोपलादोषा  
णां त्रितयेऽनुपानमुचितं सक्षौद्रमाद्रौदिकम् ॥  
॥ १३४ ॥ अन्यच्च—घनपर्पटकंज्वरेग्रहण्यांमथितं  
हेमगरेवमीषु लाजाः ॥ कुटजोऽतिसृतोवृषौऽस्र  
पित्तेगुदकीलेष्वनलः क्रमोकृमिघ्नः ॥ १३५ ॥ वै.नी.

भाषानुवादः—जब इसके अनन्तर ग्रन्थकर्त्ता कवि कितनेक रोगोंपर सामान्य प्रकारसे सवरस और उपरस आदिके अनुपान लोलिवराजर्जाके मतानुसार वर्णन करतेहैं यद्यपि हम इस पाचवें प्रमोदमे मृत्युजयादि रसोके तथा सुवर्णादि सतधातु उपधातुओंके और पारदादि रसोपरसोंके पृथक् २ अनुपान वर्णन करनेकेहैं तथापि साधारणप्रकारसे प्रत्येक भस्मको निम्नलिखित अनुपानोंके राग उन २ रोगोपर कि जिन २ के नाम दर्जातिहैं वैद्य दे सकेहैं, शूलरोगमे घी और हीगसग, जर्णज्वरमे छोटी पीपल और सहतसग, वातव्याधि मे घी और लहसन सग, धाममे सोठ, मिरच, पीपल, और सहत सग, शीतागमे काली मिरच और नागरपेलके पानसग प्रेमहमें मिश्री और त्रिफला सग और सन्निपातमे अदरकके रस और सहत सग प्रत्येक रसादिकी भस्म देना

चाहिये ॥ १३४ ॥ ज्वरेमें नागरमेथ्या और पित्तपापडे सग सप्रहणीमें छाल सग विप्ररोगमें धतूरेके पान सग, वमन ( उलटी ) में धानकी लाही ( खील ) के पानी सग, अतिसारमें कुडालकी छाल सग, रक्तपित्तमें अरुणके रस सग, अर्श ( मूलव्याधि ) में चित्रक सग, और कृमि रोगमें वायविडंग सग, प्रत्येक रसादिभस्म देना चाहिये ॥ १३५ ॥ ऐसा वेद्यजीवनमें लिखाहै।

अथ विषानुपानानि ।

शिखिकार्किरसोपेतंविषमज्वरजिद्विषम् ॥ विषय-  
ष्ट्याह्वयंरास्त्रासेव्यमुत्पलकंदकम् ॥ १३६ ॥ तंदु-  
लोदकपीतानिरक्तपित्तस्यभेषजम् ॥ रास्त्राविडंग  
त्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ॥ १३७ ॥ पद्मकंक्षौद्रम-  
मृताविषश्चश्वासकासजित् ॥ सितारसविषक्षीर  
प्रवालमधुभिःकृताः ॥ १३८ ॥ वान्तिनिहन्तिगु-  
टिकामनुजानानंसंशयः । मधुमद्यनिशारेणुसैन्ध-  
वैःकुटत्वग्युतम् ॥ च्यवनप्राशनोपेतंविषंक्षपय-  
ति क्षयम् ॥ १३९ ॥

भाषानुवादः—अब विष ( वैच्छनाग आदि ) के अनुपान वर्णन करतेहैं—  
शुद्ध नीला तूथा, और शुद्ध, पारेके सग विषका सेवन करनेसे ज्वर दूर होय  
मुलहटी, राज्ञा, कमलगुग्गु ॥ १३६ ॥ इनके चूर्ण सग चावलके पानीसाथ  
विष सेवनसे रक्तपित्त दूर होय, राज्ञा, वायविडंग, त्रिफला, देहदारु, त्रिकटु  
॥ १३७ ॥ कमलगुग्गु सहित, और गिलोय ( गुरच ) सग विष, सेवनसे श्वास,  
कास दूर होय, मिश्री, शुद्धपारा, विष, दूध, मूगेकी भस्म, और सहित इनकी  
गोली बनाकर ॥ १३८ ॥ उसे खावे तो मनुष्योंकी वाती ( उलटी ) दूरहोय, सहित,  
१ वण्टनागको सस्कृतमें वत्सनाम कहतेहैं विषके कहनेसे विषमात्रका ग्रहण  
होताहै पर विशेषतः वण्टनागकेही अनुपान जानिये ।

मद्य, हलदी, पित्तपापडा, सैधव, और कूडेकी छाल इनके साथ अथवा च्यवन-  
प्राश अवलेह सग विपका सेवन करनेसे क्षयी ( राजयक्ष्मा जिसे गुजरातीभी,  
कई कहतेहैं ) दूर होय ॥ १३९ ॥

विजयापिप्पलीमूलंपिप्पलीद्वयचित्रकैः ॥ पुष्क  
राहसठीद्राक्षायवानीक्षारदीप्यकैः ॥ १४० ॥  
सितायष्टीद्विवृहतीसैन्धवैःपालिकैःपचेत् ॥ सवि  
षार्द्धपलैःप्रस्थंघृताक्तंजीर्णभुक्षुपिवेत् ॥ १४१ ॥  
दुर्नाममेहगुल्मार्शतिमिरक्रिमिपांडुकाः ॥ गल  
ग्रहग्रहोन्मादकुष्ठानिचनियच्छति ॥ १४२ ॥ सु-  
स्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रतिविषाविषम् ॥ धात-  
कीमोचनिर्यासंचृतास्थिग्रहणीहरम् ॥ १४३ ॥  
कृच्छ्रघ्नाविषपथ्याग्निदंतीद्राक्षाविषावृषाः ॥ शि-  
लाजितुविषंयूपमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ १४४ ॥

भाषानुवादः—भाग, पीपलामूल, छोटीपीपल, गजपीपल, चित्रक, पोकर  
मू५, कचूर, दाख, अजवायन, जवाखार, अजमोदा ॥ १४० ॥ मिश्री,  
मुलहठी, दोनों कटियाली, सैधानोंने, और पालिक ( पालका ) इन सब  
औषधियोंको आधा पल लेवे और आधा पलही विप लेवे, पश्चात् सबका  
चूर्ण करके उसे १ प्रस्थ ( ५३ तोले ४ मासे ) घृतमें पकावे और उसमेसे  
अनुपानयोग्य नित्य सेवन करे जब वह विप पचजावे तब ऊपरसे औरभी  
स्वशक्ति अनुसार घृत पानकरे ॥ १४१ ॥ तो असाध्य मेह, गुल्म, तिमिर,  
ठमि, पाटु, गन्ग्रह, उन्माद, और कुष्ठ सबरोग दूर होयें ॥ १४२ ॥ नागर-  
मोधा, कूडेकी छाल, पाटा, चित्रक, त्रिकटु, अतीम, धार्यटेके फूल, मोचरस,  
और आमकी गुठली इनके सग विप सेवनसे सप्रहणी दूर होय ॥ १४३ ॥  
हड्डे, चित्रक, दर्ता, दाख और अरपेके सग विप सेवनसे मूत्रकृच्छ-

का तथा शिलाजीत सोंठ, मिरच और पीपल सग विष सेवनसे उदावर्त और पथरीका नाश होय ॥ १४४ ॥

गोमूत्रक्षारसिंधूतथविषपाषाणभेदकम् ॥ वज्र  
वद्धारयत्येतदेकतःपीतमश्मरीम् ॥ १४५ ॥ त्रिफ  
लासर्जिकाक्षारैर्विषंगुल्मप्रभेदनम् ॥ पिप्पली  
पिप्पलीमूलंविषंशूलहरंपरम् ॥ १४६ ॥ विषंद्रवन्ती  
मधुकद्राक्षारास्त्रासठीकणाः ॥ विषवेह्लामिशि  
क्षीरंगुल्मह्रीहानिबर्हणम् ॥ १४७ ॥ श्लीहोदरघ्नप-  
यसाशताह्वाकृमिजिद्विषम् ॥ वायसीमूलकाथेन  
पीतंकुष्ठहरंविषम् ॥ १४८ ॥ पयसाराजवृक्षत्वक्  
त्रायन्तीवाकुचीबलात् ॥ श्लीहघ्नंवाकुचायांचविषं  
काथेनकुष्ठजित् ॥ १४९ ॥ अवल्गुजैलाकजया  
विडक्षारद्वयंविषम् ॥ लेपस्ससैन्धवःपिष्टोवारि-  
णाकुष्ठनाशनः ॥ १५० ॥

भाषानुवादः—सैवानॉन, और पाषाणभेद युक्त गोमूत्र सग विषको पान करे तो जैसे वज्रपर्यंतोंको विदीर्ण करदेताहै तैसे विष पथरीको विदीर्ण करदेता है ॥ १४५ ॥ त्रिफला और सर्जिकाखार सग गुल्मका, पीपलामूल सग शूलका ॥ १४६ ॥ द्रवती, महुआ, दाख, राज्ञा, कचूर, पीपल, वायविडग, सोंफ और दूध सग विष गोला और तापतिह्रीका नाश करताहै ॥ १४७ ॥ केवल दूधके साथ विष पीनेसे श्लीहोदर ( तापतिह्री ) और सोंफ सग विष सेवनसे कृमिरोगका नाशहोय, कजेकी जडके काथ सग विष सेवनसे कुष्ठभी दूरहोय ॥ १४८ ॥ अमलतासकी छाल त्रायती ( त्रायमाणा ) वावची, खरेंठी, इनके चूर्णसहित दूध सग, अथवा उक्तापधियोंसे सिद्धकिये हुए दुग्धसग विषपान करे तो तापतिह्री दूर होय और उक्तापधियोंके काथमें सुहागे सहित विषपान करे तो

कुष्ठभी दूर होय ॥ १४९ ॥ एतद्वा सजीखार और जवाखार सेवानोन इनके संग विष(सिंगियात्रिप) मिलाकर पानीसे खरलकर लेप करे तो कुष्ठ दूर होय ॥ १५० ॥

एरंडतैलत्रिफलागोमूत्रचित्रकंविषम् ॥ सर्पिषा  
सहितं पीतं वातातित्वमपोहति ॥ १५१ ॥ स्वरसं  
वीजपूरस्य वचाब्राह्मीरसंघृतम् ॥ वंध्यापिबतिस  
विषं सुपुत्रैः परिवार्यते ॥ १५२ ॥ वीरालांगलिकी  
दंती विषपाषाणभेदकैः ॥ प्रयोज्यमूढगर्भाणां प्र  
लेपो गर्भमोचनः ॥ १५३ ॥ देवदारुविषं सर्पिर्गो  
मूत्रकंटकारिका ॥ वचावाक्स्खलनं हन्ति बुद्धेश्च प  
रिवर्धनम् ॥ १५४ ॥ विषं सर्पिः सिताक्षौद्रं तिमिरा  
पहं मंजनम् ॥ विषं चैकमजाक्षीरकल्पितं घृतधूपि  
तम् ॥ १५५ ॥ विषं धात्रीफलरसैरसकृत्परिवारि  
तम् ॥ अंजनं शंखसहितं प्रगाढं तिमिरं जयेत् ॥ १५६  
विषमिन्द्रायुधं स्तन्ये घृष्टं काचमिदं मंजनम् ॥ वीज  
पूररसैर्घृष्टं विषं तद्वत्सितान्वितम् ॥ १५७ ॥ विषं  
सागधिकाद्वेचनिशोकाचमंजनम् ॥ शुक्लार्मश्च  
विषं कृष्णायुक्तं गोमूत्रभाषितम् ॥ १५८ ॥ भल्ला  
तकान्निशम्पाकविषैर्वासूत्रपेषितैः ॥ लेपो विचर्चि  
कादद्गुरसिकाकिटिभाषहा ॥ १५९ ॥ स्वर्जिका  
क्षारसिधूत्थशुक्तशुक्तं वरं विषम् ॥ कर्णयोः पूरणं  
तीव्रकर्णशूलनिवर्हणम् ॥ १६० ॥ प्रपांडरीकमं  
जिष्ठाविषतिंदुसमुद्भवैः ॥ निहन्ति साधितं तैलंगं

दूवेणमुखामयान् ॥ १६१ ॥ शालाखदिरकंकोल  
जातीकर्पूरचंदनैः ॥ वोलाब्दवालैर्द्विगुणविषैस्सा  
रांबुपेषितैः ॥ १६२ ॥ समूत्रवटिकाकलसाधृताघ्न  
न्तिमुखामयान् ॥ कटुतैलंविषंनस्यंपलिकारुंषि  
कापहम् ॥ १६३ ॥ गुंजाटकणशिशुमूलरजनी  
शम्पाकभल्लातकस्तुह्यकार्शिकरंजसैंधववचाकुष्ठा  
भयालाङ्गली ॥ वर्षाभूषडभूशिराषवरणव्योषाश्व  
मारोविषंगोमूत्रंशमयेद्विलुप्तमपर्चीं ग्रंथ्यर्बुदेश्ली  
पदान् ॥ १६४ ॥ ग्रंथांतरादिदंलिखितमखिलम् ॥

भाषानुवादः—एरडतैल, त्रिफला, गोमूत्र, चित्रक, और विषका घृतके साथ पान करे तो बार्दाकी पीडाका नाश होय ॥ १५१ ॥ विजोरेका अगरम वच, ब्राह्मीका रस, नवीनघृत, इनमें विषको युक्त करके पान करनेसे बध्वा-  
ह्मीभी गर्भवती अवश्य होय ॥ १५२ ॥ सफेद कनेर, कलियारी, दत्ती, वच्छनाग, ( विष ) और पाषाणभेद इनका लेप करनेसे मूढगर्भकाभी विमो-  
चन ( निकलजाना ) होय ॥ १५३ ॥ देवदारु, विष ( वच्छनाग ) कटियाली, और वच इनके सेवनसे जिह्वाके समस्तरोग ( विकार ) दूरहो और बुद्धि बढे ॥ १५४ ॥ घी, मिश्री, और सहनमे गुद्द विषको घिसकर नेत्रमे लगावे तो तिमिर ( दिनोंधी ) दूर होय, यदि केवल विषकोही बकरीके दूधमें घिसकर नेत्रमे आजे और वीकी धूनी दे तोभी तिमिर रोगका नाश होय ॥ १५५ ॥ तथा शखकी नार्भासहित, विषको आवलेके रसकी बहुतसी भावना देकर अजन प्रम्लुत ( तयार ) करे और उसे नेत्रमें लगावे तो घोर तिमिर रोगकाभी नाश होय ॥ १५६ ॥ हीरा और विषको स्त्रीके दूधमें घिसकर नेत्रमे लगानेसे, अथवा विजोरेके रसमें मिश्री डालकर उसमें विषको घिसकर नेत्रमें लगानेसे ॥ १५७ ॥ तथा छोटोपीपल, दोनों हलदी, और विष इनका अजन बनाकर

१ विषके अनुपानमें जह्दार विष लिप्ताई बहार शुद्ध कियाहुआ विष लेना चाहिये।



नेत्रमे लगानेसे नेत्रमे जो काचरोग होताहै वह दूरहोय, और छोटी पीपल सग विषको गोमूत्रसे घिसकर नेत्रमे लगानेस शुक्लार्म नामक नेत्ररोग दूरहोय ॥ १५८ ॥ भिलावे, चित्रक, अमलतासके गूदे सग विषको पीसकर लेग करनेमे विचर्चिका ( व्योचि ) दाद, रसिका, और किटिभकुष्ठ ये सब दूर होय ॥ १५९ ॥ सज्जी, सेंधानान, शिरका, और बाजी, इनके सग वच्छनाग विषको खल करके कानोमे डाले तो कर्णशूल नाश होय ॥ १६० ॥ कमलपुष्प, मजीठ, विष, और कुचला इनसे तेलको बनाकर उसके कुह्ठा करे तो समस्त मुखरोग दूरहोय ॥ १६१ ॥ अयरा शालकी छाल, कत्था, फकाल, जायफल, भोमसेनकिपूर, चदन, बोल, नागर मोथा और सुगधनाला ये सब ओषधि समान लेवे और उक्त ओषधियोसे दूना विष लेकर सबको खेरसारके पानी ॥ १६२ ॥ ओर गोमूत्रसे खल करके गोलिधा बनावे उस गोलीको मुखमें रखे तो मुखके समस्तरोग दूर होय, कडवे तेलमे विष मिलाकर नासलेवे तो नासिकाके, पालिका और अरुपिकादि समस्त रोग दूर होय ॥ १६३ ॥ चिरमी ( गुमचीगुजा ) सुहागा, सहजने ( मुगने ) की जड, हलदी, अमलतास, भिलावा, यूहर, आक, चित्रक, कजा, सेंधानेन, वच, कूठ, हर्ड, जालियारी, वर्णाभू ( पुनर्नया—सोंठा ) पठभू, शिरसकी छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, कनेर और वच्छनाग ( विष ) इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लगानेसे इद्रलुत ( मस्तकके बालोके न आने मयारोग ) अपचरोग, गाठ, अर्बुद और श्लीषद ( हातीपावभी जिसे कहतेहैं ) इन सब रोगोका नाश होय ॥ १६४ ॥ ये विषके अनुपानके समस्त लोक हमने ग्रथान्तरसे लिखेहैं, इनमें कहीं पाठ अशुद्ध जान पड़े तो विद्वान् मुझे दोष न देवें, मैंने जैसा पाठ या पैमाही लिखदियाहै ॥

इति श्रीमत्पण्डितज्ञारसरागविरचित भाषानुवादविभूषितेऽनुपानदर्पणे

मृत्युजयादिरसवानूपधातुपारदादिरसोपरसाना विषस्य-

चानुपानविवेककथने पञ्चम. प्रमोद ॥ ५ ॥



**भाषानुवादः—**अब इसके आगे योगराजगुग्गुल, नारायणचूर्ण, और मृत्युं-  
जय आदि रसोको बनानेके विवेकको वर्णन करेंगे—प्रथम योगराजगुग्गुल बना-  
नेकी विधि वर्णन करतेहैं—१ सोठ, २ छोटेपीपल, ३ चव्य (चव) ४ पीपला  
मूल, ५ चित्रक, ६ अग्निपक्क हींग, ७ अजमोदा, ८ सर्पप ( शिरस—सरसो )  
९ सपेदजीरा, १० कालाजीरा, ॥ १ ॥ ११ रेणुकव्राज, १२ इद्रजव,  
१३ पाठा, १४ वायविडग, १५ गजपीपल, १६ कुटकी, १७ अतीस, १८  
भारगी, १९ वच और, २० मूर्वा ॥ २ ॥ यह २० प्रत्येक औषध  
ग्राण २ ( ४ मासे ) प्रमाण लेवे और इन उक्त सर्व औषधियोंसे  
दूना त्रिफला लेकर ॥ ३ ॥ सबका चूर्ण करे पश्चात् इस चूर्णके समान (बराबर  
शुद्धगुग्गुल और वागभस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ॥४॥  
मडूर और रससिंदूर के सात भस्म पल २ प्रमाण लेवे, पश्चात् गुडकी चासनी-  
की तुल्य शुद्ध गुग्गुल की चासनी बनाकर पूर्वोक्त औषधियोंका चूर्ण और उक्त-  
भस्मोंको उस शुद्ध गुग्गुलकी चासनीमें मिलावे ॥५॥ जब वे सब मिलकर एक  
पिंड बनाजावे तब उसकी चार मासेकी गोलिया बनाकर उन्हे घीकी मटकीमें  
रखें ओर उसमेंसे जितनी रोगीको सेवन करना योग्य समझे ग्रहण करे ॥६॥  
इसे योगराजगुग्गुल कहतेहैं, यह त्रिदोषको दूर करनेवाला और रसायन (आयु,  
बल, बुद्धि वृद्धिकारक और रोगसंहारक ) है, इसके सेवनमें मैथुन ( स्त्रीसंग )  
तथा किसी पदार्थके खाने पीनेकी मनाई नहीं है ॥ ७ ॥ यह योगराजगुग्गुल  
समस्त वातजन्य रोगोंका, कुष्ठोंका, अर्शों ( मूळव्याधि ) मसोंका ग्रहणी ( सप्र  
हणी ) प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगदर ॥ ८ ॥ उदावर्त, क्षयी, गुल्म,  
जपस्मार ( मृगी ) उरग्रह, मदाग्नि, श्वास, कास, और अरुचि इतने रोगोंका  
नाश करताहै ॥ ९ ॥ यह योगराजगुग्गुल पुरुषोंके वातविकार स्त्रियोंके रजो-  
धर्मसवधी विकारोंको हरण करनेवाला तथा पुरुषोंकी धातुवृद्धिद्वारा पुरुषोंको  
पुत्र और स्त्रियोंकी गर्भ देनेवाला है ऐसा शार्ङ्गधरके दूसरे खंड के ७  
वें अध्यायमें लिखाहै ॥ १० ॥

अथ नारायणचूर्णविधिः ।

चित्रकस्त्रिफलाव्योषंजीरकंहपुषावचा ॥ यवानी  
पिप्पलीमूलंशतपुष्पाजगंधिका ॥ ११ ॥ अजमो  
दाशठीधान्यंविडंगंस्थूलजीरकम् ॥ हेमाह्वापौष्क  
रंमूलंक्षारौलवणपञ्चकम् ॥ १२ ॥ कुष्ठंचेतिसमां  
शानिविशालास्याद्विभागिका ॥ त्रिवृत्रिभागा  
विज्ञेयादन्त्याभागत्रयंभवेत् ॥ १३ ॥ चतुर्भागासा  
तलास्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत् ॥ पाचनस्त्रेहनाद्यै  
श्चस्निग्धकोष्ठस्यरोगिणः ॥ १४ ॥ दद्याच्चूर्णविरे  
कायसर्वशूलप्रणाशनम् ॥ हृद्रोगेपाण्डुरोगेचका  
सेश्वासेभगंदरे ॥ मंदाग्नौचज्वरे कुष्ठेग्रहण्यांच  
गलग्रहे ॥ १५ ॥ शार्ङ्ग० खं० २ अ० ६ ॥

भाषानुवादः—अथ नारायणचूर्ण बनानेकी विधि वर्णन करतेहैं—१ चित्रक, २  
त्रिफला, ३ सोठ, ४ मिरच, ५ पीपल, ६ जीरा, ७ हपुषा (हौज्वरे), ८ वच,  
९ अजवान, १० पीपलामूल, ११ बडीशोंफ, १२ वनतुलसी, ॥ ११ ॥  
१३ अजमोदा, १४ कवूर, १५ वनियों, १६ वायविटग, १७ कलौजी,  
१८ चोगव, १९ पोकरमूल, २० सजीखार, २१ जवाखार, २२ पाचों नोन,  
॥ १२ ॥ और कूट यह २७ औषध बराबर, एकएकभाग तथा इंद्रायन दो-  
भाग, निसोत तीनभाग, तथा दती ( दात्युणी ) भी तीनभाग ॥ १३ ॥ ४  
चारभाग पीले यूहरकी जड अथवा पीला यूहरही लेवे, पश्चात् उक्त समस्त  
औषधोंको कुटके महीन कपडछान चूर्ण बनावे और रोगीको प्रथम पाचन

१ इसे महाराष्ट्रभाषामें शेरणीभी कहतेहैं, यह नदीके समीप होतीहै प्रसिद्धहै ।

२ यूहर के प्रकारसा होताहै पर नारायणचूर्णमें कौडीदार यूहर जिसकी साखें  
काजी लपेटे दी निकलती हैं कुछ पीठापनभी रहताहै उसे लेना चाहिये ।

अनतर क्षिग्ध ( घृत ) पान विधिपूर्वक कराके जब उसका कोठा सचिक्रण हो-  
जावे तब यह नारायणचूर्ण रेचन ( दस्त ) होनेके लिये देवे, इससे सब  
प्रकारके शूल हृद्रोग, पाटु, कास, श्वास, भगदर, मदाग्नी, ज्वर, कुष्ठ, सप्रहणी  
और गलप्रह आदि समस्त रोग दूर होतेहैं ॥ १५ ॥ ऐसा शार्ङ्गधरके दूसरे  
खंडके ६ वे अध्यायमे लिखाहै ॥

अथ मृत्युञ्जयरसनिर्माणविधिः ।

अव्यक्तः सिद्धिदश्शुद्धो रोगघ्नः कीर्तिवर्द्धनः ॥  
यशःप्रदश्शिवःसाक्षान्मृत्युञ्जयरसःस्मृतः ॥१६॥  
विषस्यैकंतथाभागंमरिचंपिप्पलीकणा ॥ गन्ध-  
कस्यतथाभागंभागंस्यादृङ्गणस्यच ॥१७॥ सर्वत्र  
समभागंस्याद्व्यङ्गुलन्तुद्विभागिकम् ॥ चूर्णये  
त्खल्वमध्येतुमुद्गमानांवटीञ्चरेत् ॥ १८ ॥ जंवी-  
रस्यरसेनात्रकार्यंहिङ्गुलशोधनम् ॥ रसश्चेत्सम  
भागःस्याद्व्यङ्गुलंनेष्यतेतदा ॥ १९ ॥ गोमूत्र  
शोधितंचात्रविषंसौरविशोधितम् ॥मृत्युरूपंज्व-  
रंहन्तिमृत्युञ्जयरसस्मृतः ॥ २० ॥ तीव्रज्वरे  
महाघोरेपुरुषेयौवनान्विते ॥ पूर्णमात्राप्रदातव्या  
पूर्णवटीचतुष्टयम् ॥ २१ ॥ स्त्रीवालवृद्धक्षीणेषु-  
ह्यर्द्धमात्राप्रकीर्तिता ॥ अतिवृद्धेचक्षीणेचशिशौ  
चाल्पवयस्यपि ॥ २२ ॥ तुर्यमात्राप्रदातव्या-  
व्यवस्थासारनिश्चिता ॥ नवज्वरेमहाघोरेयामैका  
नाशयेद्भुवम् ॥ २३ ॥ मध्यज्वरेतथाजीर्णेत्रिरा-  
त्रान्नाशयेद्भुवम् ॥ सप्ताहात्सन्निपातोत्थंज्वरंजी

## र्णकसंज्ञकम् ॥ २४ ॥ रसेन्द्रसारसंग्रहेज्वराधि- कारेह्युक्तमिदम् ॥

भाषा०—अब मृत्युजयरस बनानेकी विधि वर्णन करते हैं अतुलित प्रभाय युक्त सिद्धिप्रद निर्मल ( दोपरहित ) रोगनाशक, कीर्तिविकाशक, यश देनेहारा, कल्याणस्वरूप यह मृत्युजय रस है ॥ १६ ॥ इसको इस प्रकारसे बनाना चाहिये—१ भाग विष ( वच्छनाग ) १ भाग कालीमिरच १ भाग छोटीपीपल १ भाग शुद्ध आवलासार गंधक १ भाग शुद्ध सुहागा ॥ १७ ॥ ये सब समान लेवे और हिंगुल २ भाग लेवे पश्चात् सबको नागरवेलीके पानके रसमें अथवा अदरकके रसमें खल करके मूगके बराबर गोलिया बनावे ॥ १८ ॥ इस मृत्यु-जय रसमे जो हिंगुल डाले सो ज्वरीके रससे शुद्धकरके डाले, यदि सब औषधियोंके समान १ भाग शुद्धपाराही डाले तो फिर हिंगुलको न डाले ॥ १९ ॥ और विष ( वच्छनाग ) जो इसमें डाले उसेभी गोमूत्रमें शुद्धकरके घूपमे सुखा कर डालना चाहिये, इसप्रकारसे बनायाहुआ यह रस मृत्युरूप ज्वरका नाश कर-ताहै इसीलिये इसको मृत्युजयरस कहतेहैं ॥ २० ॥ यदि रोगी तरुण ( जवान ) अवस्थावाला हो तो उसे अतिवेगयुक्त भयकर ज्वरमेंभी इस मृत्युजयरसकी पूर्ण मात्रा देनी चाहिये, चारगोलीकी पूर्ण ( पूरी ) मात्रा इस रसकी होतीहै ॥ २१ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध, और क्षीणरोगीको अर्द्धमात्रा ( २ गोली ) तथा अत्यत वृद्धको, अत्यत क्षीणको और अति छोटेबालकको ॥ २२ ॥ उक्त रसकी चौथाई मात्रा ( १ गोली, ) ही देनाचाहिये, क्योंकि मात्राका नियम अवस्थानुसारही निश्चय कियागयाहै—नवीन महाभयकर ज्वरको १ प्रह्वरमे ॥ २३ ॥ मध्यज्वरको अजीर्णज्वरको पुराणज्वरको, ३दिनमे, सन्निपातको और जीर्णज्वरको ७दिनमें यह मृत्युजयरस दूर करताहै ॥ २४ ॥ ऐसा रसेन्द्रसारसंग्रहके ज्वराधिकारमें लिखाहै.

---

१ ज्वर आगमनसे ७ दिनतक तरुण ( नवीन ) ज्वर ७ दिनसे १४ दिनतक मध्यज्वर १५ दिनसे २१ दिनतक पुराणज्वर और २१ दिन पश्चात् जीर्णज्वर कहताहै ।

अथ वसन्तकुसुमाकररसनिर्माणविधिः ।

प्रवालरसमौक्तिकांवरमिदंचतुर्भागभावपृथक्पृथगथस्मृतेरजतहेमनीद्वयशंके ॥ अथोभुजगरंगकंत्रिलवकंविमर्द्याखिलं शुभेहानिविभावयेद्भिषगिदंधियासर्वशः ॥ २५ ॥ द्रवैर्वृषनिशेक्षुजैः कमलमालतीपुष्पजैः पयःकदलिकंदजैर्मलयजैः पणनाभ्युद्भवैः ॥ वसन्तकुसुमाकरोरसपतिर्द्विवल्लोन्मितस्समस्तगदहृद्भवेत्किलानिजानुपानैरयम् ॥ २६ ॥ ग्रथान्तरतः ॥

भाषानुवादः—अथ वसन्तकुसुमाकर रस बनानेकी विधि वर्णन करते हैं। मूंगा, चंद्रोदय, मोती और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक ४ भाग (४ तोले) लेवे रूपेकी और सोनेकी भस्म २ भाग ( दोदो तोला ) पृथक् २ लेवे लोहभस्म ( सार ) सीसेकी भस्म, और वगभस्म / रागेकी भस्म ) ये प्रत्येक तीनभाग ( तीन तीन तोले, लेवे पश्चात् शुभदिन सुमुहूर्तमें वैद्य इन सबको एकत्रकर खल (खलपत्ते) में डाले और निम्न लिखित रसोकी यथायोग्य अपनी बुद्धिसे विचारके भावन देवे ॥ २५॥ अटूसा, हलदी, साठेका रस, कमलपुष्प, मालतीपुष्प, गोदुग्ध, केलाकद, चंदन, और कस्तूरी इनमेंसे जिमका रस निकलसके उनके रसकी और जिनका रस न निकलसके उनकी वैसेही भावना देनेसे सब रसोका राजा यह वसन्तकुसुमाकर रस बतनाहै इसकी ४ रत्तीकी मात्रा न्यारे २ अनुपानोके साथ देनेसे समस्त रोगोंका नाश होय ॥ २६ ॥ ऐसा ग्रथांतरमें लिखाहै

अथ लोकनाथरसनिर्माणविधिः ।

शुद्धोवुभुक्षितस्सूतोभागद्वयमितोभवेत् ॥ तथा गंधस्यभागौद्वौकुर्यात्कज्जलिकांतयोः ॥ २७ ॥ सूताच्चतुर्गुणेष्वेवकपर्देपुविनिःक्षिपेत् ॥ भागैकं

कणदत्त्वागोक्षीरेणविमर्दयेत् ॥ २८ ॥ तथाशंख  
 स्यखण्डानांभागानष्टौप्रकल्पयेत् ॥ क्षिपेत्सर्वं  
 पुटस्यान्तश्चूर्णलिप्तशरावयोः ॥ २९ ॥ गर्तेहस्तो  
 न्मितेधृत्वापचेद्भजपुटेनच ॥ स्वांगशीतंसमुद्धृ  
 त्यपिष्ट्वातत्सर्वमेकतः ॥ ३० ॥ षड्गुंजासंमितं  
 चूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ घृतेनवातजेदद्यान्नवनी  
 तेनापित्तजे ॥ ३१ ॥ क्षौद्रेणश्लेष्मजेदद्यादतीसा  
 रेक्षयेतथा ॥ अरुचौग्रहणीरोगेकाश्येमंदानलेत  
 था ॥ ३२ ॥ कासेश्वासेषुगुल्मेषुलोकनाथोरसो  
 हितः ॥ तस्योपरिघृतान्नचभुंजीतकवलत्रयम् ॥  
 ॥ ३३ ॥ मंचेक्षणैकमुत्तानःशयीतानुपधानके ॥ अ  
 नम्लमन्नंसघृतंभुंजीतमधुरंदधि ॥ ३४ ॥ प्रायेण  
 जांगलमांसंप्रदेयंघृतपाचितम् । सुदुग्धभक्तंदद्या  
 च्चजानेनौसाध्यभोजने ॥ ३५ ॥ सघृतान्मुद्गवटका  
 न्द्वयंजनेष्वेवचारयेत् ॥ तिलामलककल्केनस्ता  
 पयेत्सर्पिषाथवा ॥ ३६ ॥ अभ्यंजयेत्सर्पिषाचस्ता  
 नंकोष्णोदकेनच ॥ कचित्तैलंनगृहीयान्नविल्वं  
 कारवेल्लकम् ॥ ३७ ॥ वार्ताकुंशफरींचिंचांत्यजे  
 दद्यायाममैथुनम् ॥ मद्यंसंधानकंहिंगुशुण्ठीमाषा  
 न्मसूरकान् ॥ ३८ ॥ कृष्मांडराजिकांकांपकांजि  
 कंचैववर्जयेत् ॥ त्यजेदयुक्तनिद्रांचकांस्यपात्रेच  
 भोजनम् ॥ ३९ ॥ ककारादियुतंसर्वत्यजेच्छाक



फलादिकम् ॥ पथ्योऽयं लोकनाथस्तु शुभनक्षत्रवा  
सरे ॥ ४० ॥ पूर्णातिथौ शुक्लपक्षे जाते चंद्रवले तथा ॥  
पूजयित्वा लोकनाथं कुमारीं भोजयेत्ततः ॥ ४१ ॥  
दानं दद्याद्विघटिकामध्ये ग्राह्यो रसोत्तमः ॥ रसा  
त्संजायते तापस्तदा शर्करया युतम् ॥ ४२ ॥ सत्त्वं  
गुडूच्या गृहीयाद्वंशरोचनया युतम् ॥ खर्जूरं दाडि  
मंद्राक्षामिक्षुखंडानि चारयेत् ॥ ४३ ॥ शार्ङ्गं  
खं० अ० १२ ।

भाषानुवादः—अब लोकनाथरसके बनानेकी विधि वर्णन करते हैं २ भाग  
शुद्ध जो दुग्धुक्षित पारा—और १ भाग शुद्ध गन्धक इन दोनोंको मिलाकर  
गूँथ करे जब इनकी कजली बन जावे तब ॥ ३७ ॥  
पारने चाँगुनी कौडियोंमें वह कजली भरे पश्चात् १ भाग  
भुङ्गागा लेकर उसे गोदुग्धमें खल करके उन कौडियोंके मुखपर लगावे कि  
जिसमें उन कौडियोंमें भरी हुई कजली बाहर न निकलने पावे ॥ ३८ ॥  
पाँछे ८ भाग शखके टुकड़े लेके मट्टीके दो सिकोरे ( शराई ) जिसको भीतर  
चूनेसे पोत ( लीप ) देवे और इन चूनेसे पोते हुए दो सिकोरेमेंसे एकसिको-  
रेमें शखके ८ भाग टुकड़ोंमेंसे आधे टुकड़े भरकर उनपर वे कजली भरी हुई  
कौटिया रखकर उनके ऊपर जो शखके टोप ( आवे ) टुकड़े रहे सो रखे  
पश्चात् दूसरा सिकोरा ऊपरसे ढाककर इस सपुटके मुखको कपडमट्टीसे दृढ  
बन्धकरके ॥ ३९ ॥ १ हाथ गहरे खड्डे ( गड्ढे ) में उस सपुटको रखकर

१ शुद्धित पारा उसे कहते हैं जो गन्धक आदिके जारणसे सुवर्णीदि वातुओंके  
योग्य होय ।

२ सपुट उसे कहते हैं जो दोना शराई ( सिकोरे ) के मुख मिलाकर बंद किया  
जावे पर सपुट करनेके मट्टीके सिकोरोकी प्रथमही पायाणपर युक्तिसे ऐसे बिसलेने  
परिणति कि जिससे दोनों सिकोरोकी बोर ऐसी मिलजावे कि जिसमें सविमान न रहे ।

गजपुटसे पक्कावे ( आचंश्चे ) जत्र पूर्ण शीतल हांजात्र तत्र उम सपुटगेसे  
 शखके टुकडोंकी और कजली भरीहुई कौडियोंकी समस्त भस्म एकत्रकर  
 खलमें महीन पसिलेवे ॥ ३० ॥ इसे-लोकनाथरस कहते हैं इसमेंसे ६ रत्ती  
 मात्र लेकर उसमे २९ काली मीरचीके चूर्णको मिलाकर घीके सग वातरोगमें  
 नवनीत ( माखन ) के सग पित्तरोगमे ॥ ३१ ॥ और सहत सग कफरोगमे  
 देवे तो उक्त समस्त रोग दूर होय, तथा अतिसार, क्षयी, अरुचि, सग्रहणी,  
 कृशता, मदाग्नि ॥ ३२ ॥ कास, श्वास और गुल्म इन रोगोंपरभी यह लोक  
 नाथरस अतिहितप्रद है इसको सेवन करनेवाला निम्नलिखित प्रकारसे आहार  
 विहारका वर्ताव रखे उक्त रसकी पूर्वोक्त मात्रा लेकर उसपर घृतसहित चाव  
 लोंके ३ ग्रास ( कवल ) लेवे ॥ ३३ ॥ पश्चात् मच ( खाट ) पर तकिया  
 गद्दी ( बिछौने ) बिनाही एकक्षणभर सीधा सोवे-खटाईको छोडकर घृतसहित  
 मिष्ठान और मीठे दहीकोभी खावे ॥ ३४ ॥ मासाहारी ( मासखानेवाले  
 मनुष्य ) को जागल ( हरिणआदि जागलदेशज जीवोंका ) घृतपक्वमासभी  
 खानेको देवे और सायकालके भोजनके समय यदि जठराग्नि प्रदीप्त होवे,  
 ( अच्छी भूप लगे ) तो दूध चावल खानेको देवे ॥ ३५ ॥ ओर मुख अच्छा  
 होने तथा रुचि बढ़ानेके लिये व्यजनोकी जगह घीमें बनाये ( तले ) हुए  
 मूगके बडे खावे, तिल और आवलोंको पीसकर उनके कल्प ( पीठी ) से  
 अथवा घृतसे ॥ ३६ ॥ शरीरको मलकर कुष्ठ ( अल्प ) गरमपानीसे स्नान  
 करे और तेलको खानेपीने शरीरके लगानेमें कदापि स्वीकार न करे. बाल,  
 करेले ॥ ३७ ॥ कटेलीका फल, मछली, अमली, व्यायाम, ( कसरत )  
 स्नातंग, ( मैथुन ) मदिरा, सधौन हांग सोंठ, उडद, मसूर, ॥ ३८ ॥  
 कोहला, राई, काजी, अयोग्यनीद, कासेके पात्रमें भोजन ॥ ३९ ॥ जिनके  
 नामके आदिमें ककारहो ऐसे शाक और फल इन सबको त्यागन कर (छोट)दे

१-३० अगुल ( स्वादाय ) का एक शुरु बनाके उसीके प्रमाण लग्ना चौटा  
 गहरा गड्ढा खोदके उसमें ५०० गोवरी (आलनेकडा) भरके उन कडोंपर सपुट  
 रखके ऊपरसे पुन. ५०० पूर्वोक्त गोवरी भरके आच देवे इसे गजपुट कहते हैं ।

२ स्वान, वह भी एक मदिरा ( मद्य, दारु, शरान, बराडी ) का ही भेद है.

लोकनाथरसका पथ्य वर्णन किया है, प्रथमारभक दिन शुभ नक्षत्र शुभ-  
॥ ४० ॥ पचमी, दशमी, पुनोतिथि, शुक्रपक्ष, और चन्द्रग्रहण  
तम मुहूर्तमें लोकनाथ ( परमेश्वर और उत्तरस ) का पूजन करे, जन्म-  
पूजन कराके ॥ ४१ ॥ और स्वशक्त्यनुसार दोघड़ी पर्यन्त अन्न, जड़ उच्छि-  
स्तक, छत्र, भूमि, गो आदिका दान देकर, उस लोकनाथरसको प्रणम्य करे  
वाहिये, यदि इसके ग्रहण करनेपर कुछ उष्णता ( ताप, हाँ तो, मिश्री ॥ ४२  
गुरच ( गिलोय ) सत्त्व और वशलोचन इनको मिलाके प्रणम्य करे  
खर्जूर, अनार, दाख, और इक्षु [ साठे ] के टुकड़े इन्होंमेंसे किसीकोमा भक्षण  
करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ऐसा शार्ङ्गधरके दूसरेखण्डके १२ वे अध्यायमें लिखा है

अथ स्वर्णमालिनीवसन्तरसनिर्माणविधिः ।

स्वर्णमुक्तादरदमारिचंभागवृद्धयागृहीतं त्वर्प  
र्य्यष्टौप्रथममखिलंमर्दयेन्मृक्षयेण ॥ यावत्स्नेहो  
व्रजतिविलयंमर्दनेदीयतेऽसौ । गुंजाद्वंद्वंमधुमग  
धयामालिनीप्राग्वसंतः ॥ ४५ ॥ ग्रं० त० ।

\* भाषानुवादः--अब स्वर्णमालिनीवसन्तरसके बनानेकी विधि वर्णन करते हैं,  
१ मासा सुवर्णपत्र ( सोनेकेपर्क ), २ मासे अनर्वांधे मोती, ३ मासे सिंगरफ, ४ मासे  
कालीमिरच ८ मासे शुद्ध खपरिया इन सबको १ प्रहर पर्यंत ममखनसे खरलकरे  
( खलपत्तेमें घोंटे ) पश्चात् महीन छिलकेवाले ( कागजों ) निंबूके रससे जवत-  
क ममखनकी चिकनाई दूर न हो तबतक घोंटे, चिकनाई दूर होनेपर इसको  
ठिकिया वनालेये इसे स्वर्णमालिनीवसन्तरस कहते हैं इस रसको पीपल और  
सहन सग २ रत्तीमात्र देवे तो सर्प रोग दूर होय ॥ ४५ ॥

अथ वृहन्मालिनीवसन्तरसनिर्माणविधिः ।

वैक्रातमभ्रंरविताप्यरौप्यगंधःप्रवालंरसभस्मलो  
हम् ॥ सटंकणंशंशुकभस्मसर्वसमस्तमेतच्चवरी

गजपुटमें पकाये ( जानदेवे ) जब पूर्ण शीतल होजाये तब उस सपुटमें खलके टुकड़ोंकी और कजली भरीहुई कौड़ियोंकी समस्त भस्म एकत्रकर खलमें महीन पीसलेवे ॥ ३० ॥ इसे लोकनाथरस कहते हैं इसमेंसे १ रत्ती मात्र लेकर उसमें २९ काली मीरचीके चूर्णको मिलाकर घीके सग वातरोगमें नवनीत ( माखन ) के सग पित्तरोगमें ॥ ३१ ॥ और सहत सग कफरोगमें देवे तो उक्त समस्त रोग दूर होय, तथा अतिसार, क्षर्या, अरुचि, सगहणी, कृशता, मदाग्नि ॥ ३२ ॥ कास, श्वास और गुल्म इन रोगोंपरभी यह लोक नाथरस अतिहितप्रद है इसको सेवन करनेवाला निम्नलिखित प्रकारमें आहार विहारका वर्तव्य रखे उक्त रसकी पूर्वोक्त मात्रा लेकर उसपर घृतसहित चाब लोके ३ घ्रास ( ऋवळ ) लेवे ॥ ३३ ॥ पश्चात् मच ( खाट ) पर तकिया गद्दी ( बिछीने ) बिनाही एकक्षणभर सीधा सोवे—खटाईको छोडकर घृतसहित मिश्रान्न और मीठे दहीकोभी खावे ॥ ३४ ॥ मासाहारी ( मासखानेवाले मनुष्य ) को जागल ( हरिणआदि जागलदेशज जीवोंका ) घृतपक्वमासभी खानेको देवे और सायंकालके भोजनके समय यदि जठराग्नि प्रदीप्त होवे,

जहाँ भूय लगे ) तो दूध चावल खानेको देवे ॥ ३५ ॥ और मुग अन्ध होने तथा रनि बटानेके लिये व्यजनोंकी जगह घीमें बनाने ( तले ) हुए मुगके बडे खाने, तिठ और आमलोंको पीसकर उनके कटप ( पीठी ) से जन्म पुनने ॥ ३६ ॥ शरीरको मलकर कुल ( अल्प ) गरमपानीसे स्नान करे और तेजको खानेपीने शरीरके लगानेमें कदापि स्वीकार न करे. बीठ, केन्डे ॥ ३७ ॥ कंठशिला फल, मछली, अमली, व्यायाम, ( कसरत ) खसग, ( नेयुन ) मदिरा, सर्धान हांग सोठ, उडद, ममूर, ॥ ३८ ॥ कंदूआ, रई, काजो, अयोग्यनाद, कासेके पात्रमें भोजन ॥ ३९ ॥ जिनके रक्तमें आदिमें रुक्तास्त्रो रोग आत और फल इन सबको त्यागन कर ( छोड, द

१-३० अनुष्ठ ( पचाया ) का एक घट्ट बनाकर उसीक प्रमाण लग बीघा ( १४ ) लवंग केदके उसमें ५०० गोवरी ( बालनेकज ) भरके उन कडीपर सपुट लोके उतारे पुन ५०० पुनान्न गोवरी भरके जान देवे इसे गजपुट कहते हैं ।

३ चन्म, पद ना रुक मदिरा ( मद्य, दाह, शराब, मदारी ) का ही नैद दे.

ह लोकनाथरसका पथ्य वर्णन किया है, प्रथमारभके दिन शुभ नक्षत्र शुभ-  
॥२॥ ४० ॥ पचमी, दशमी, पूर्वोत्थि, शुक्लपक्ष, और चन्द्रचतुर्थ  
उत्तम मुहूर्तमें लोकनाथ ( परमेश्वर और उत्तरस ) का पूजन करके ज्योति  
भोजन कराके ॥ ४१ ॥ और स्वशास्त्रानुसार दोपड़ी पर्यन्त अन्न जल रस  
पुस्तक, छत्र, भूमि, गो आदिका दान देकर, इस लोकनाथरसको ग्रहण करने  
चाहिये, यदि इसके ग्रहण करनेपर कुछ उष्णता (ताप) हो तो, मिश्र ॥ ४२ ॥  
गुरुच ( गिलोय ) सत्त्व और वशलोचन इनको मिलाके ग्रहण करें अथवा  
खर्जूर, अनार, दाख, और इन्डु [ साठे ] के टुकटे इन्हींमेंसे किसीको भी भक्षण  
करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ऐसा शार्ङ्गधरके दूसरेखण्डके १२ वे अध्यायमें लिखा है

अथ स्वर्णमालिनीवसन्तरसनिर्माणविधिः ।

स्वर्णमुक्तादरदमारिचंभागवृद्धयाग्रहीतं स्वर्प  
र्य्यष्टौप्रथममखिलंमर्दयेन्मृत्क्षयेण ॥ यावत्स्नेहो  
व्रजतिविलयंमर्दनेदीयतेऽसौ । गुंजाद्वंद्वंमधुमग  
धयामालिनीप्राग्वसंतः ॥ ४५ ॥ अं० त० ।

\* भाषानुवादः--अत्र स्वर्णमालिनीवसन्तरसके बनानेकी विधि वर्णन करते हैं,  
१ मासा सुवर्णपत्र (सोनेकेपर्क) २ मासे अर्जुनीये मोती ३ मासे भिंगरफ (माने  
कालीमिरच ८ मासे शुद्ध खपरिया इन सबको १ प्रहर पर्यन्त मक्खनसे खरलकरे  
( खलपत्तेमें घोंटे ) पश्चात् महान छिलकेवाले ( कागजी ) निंबूके रससे जवत-  
क मक्खनको चिकनाई दूर न हो तबतक घोंटे, चिकनाई दूर होनेपर इसको  
टिकिया बनालेगे इसे स्वर्णमालिनीवसन्तरस कहते हैं इस रसको पीपल और  
सहत सग २ रत्तीमात्र देवे तो सर्प रोग दूर होय ॥ ४५ ॥

अथ वृहन्मालिनीवसन्तरसनिर्माणविधिः ।

वैक्रातमध्रंरविताप्यरौप्यगंधःप्रवालंरसभस्मलो  
हम् ॥ सटंकणंशंशुक्रभस्मसर्वसमस्तमेतच्चवरी

रजन्योः ॥ ४६ ॥ इवैर्विमर्द्यमुनिसंख्ययाचकस्तू-  
रिकाशीतकरेणपश्चात् ॥ तदावृहत्पूर्वकमालिनी  
प्राग्वसंतनामारसदोरसोयम् ॥ ४७ ॥ अं० त० ।

भाषानुवादः -अब बृहन्मालिनीवसत रसके बनानेकी विधि लिखते हैं,  
वेकान ( रत्नविशेष ) की भस्म, अन्नकभस्म, ताम्रभस्म, चादीभस्म, शुद्ध-  
गन्धक, मृगाभस्म, चन्द्रोदय, लोहभस्म, सुहागा, शङ्खभस्म ये सब बराबर  
मैक गन्ध करे पश्चात् शतानरीके रसकी और हलदीके रसकी ॥४६॥ सात ९  
भातना दे तदनन्तर कस्तूरी और कपूरकी यथायोग्य भावनादेकर अनुमानसे  
प्रितिया वा मलेवे इसे बृहन्मालिनीवसतरस कहते हैं यह रस-रस ( हर्ष )  
नेनपात्र और समस्त रोगोको दूर करनेवाला हे ऐसा प्रथातरसे लिखा है ॥४७॥

अथ पाशुपतरसनिर्माणविधिः ।

शुद्धं सूनं द्विधा गंधं त्रिभागं तीक्ष्णभस्मकम् ॥ त्रि-  
भिस्समं विधेदेयं चित्रककाथभावितम् ॥ ४८ ॥ धूर्त्त-  
बीजस्य भस्मापि द्वात्रिंशद्भागसंयुतम् ॥ कटुत्रयं  
त्रिभागं स्यात्तृणैर्लाचतत्समम् ॥ ४९ ॥ जाती-  
फलं तथा कोषभर्जनागं नियोजयेत् ॥ तथा छिन्नं  
पांशुश्च स्नुहोर्करपट्टतिन्तिडी ॥ ५० ॥ अपामार्गा-  
श्च रथजं च क्षारं दद्याद्विचक्षणः ॥ हरीतकीयवक्षारं  
नन्त्रिकाहिं गुजीरकम् ॥ ५१ ॥ टंकणं च मूततु-  
ल्यानन्दयोगेन मर्दयेत् ॥ भोजनान्ते प्रयोक्तव्यो  
मुंजादलप्रमाणतः ॥ ५२ ॥ रसः पाशुपतो नाम  
सर्वः प्रत्येककारकः ॥ दीपनः पाचनो हृद्यस्सद्यो-  
दन्तिनिषचिकाम् ॥ ५३ ॥ रसेन्द्रसारसंग्रहे अ-  
नन्त्रिकादिनरेचोक्तमिदम् ॥

नापानुवादः—अब पाशुपतरसके बनानेकी विधि वर्णन करतेहे, १ भाग शुद्ध पारा २ भाग शुद्ध गवक ३ भाग कातलोहभस्म और इन सबके बराबर शुद्ध त्रिप (बच्छनाग) लेकर चित्रकके काथमें उक्त सबोंको खरल करे ॥ ४८॥ पश्चात् ३२ भाग धनूरेके बीजोंकी भस्म ३ भाग त्रिकटु ( सोंठ, भिरच, पीपल ) ३ भाग तीनही भाग लोग ३ भाग इलायची ॥ ४९ ॥ आधा भाग जायफल और आधा भाग जायपत्री अर्थात् दोनों मिलकर ३ (तीन) भाग तथा पाचो नोन, गृहर, आक, एरड इमली ॥ ५०॥ ऊगा ( चिरचिरा, अधाशाडा अपामार्ग ) और पीपल इन सबका खार, हर्ड, जवाखार, सर्जी, हींग, जीरा ॥ ५१ ॥ और सुहागा ये प्रत्येक शुद्ध पारेके बराबर ( एकएक भाग ) लेके और इन सबको महीन पीस पूर्वोक्त चित्रकके काथमे खरल किये हुए रसोंमें मिलाकर निवृत्ते रससे पुन खल करे जब सब घुटकर एक जीव होजावे तब इसे चीनी या काँचके पात्रमें रखे इससे १ रत्ती भोजनके पश्चात् खिलावे तो ॥ ५२ ॥ यह पाशुपतरस तत्क्षणही अपने गुणको दिखगता है, यह दीपन, पाचन, हृदयको बलप्रद और विषूचिका ( महामारी, हैजेकी बीमारी ) का शीघ्रही नाश करनेवाला है ॥ ५३ ॥ ऐसा रसेन्द्रसारसग्रहके अवराधिकारमें लिखा है

अथ पर्पटीरसनिर्माणविधिः ।

रसं त्रिगुणगंधेन मर्दयित्वा सभृङ्गकम् ॥ लोहपात्रे  
घृताभ्यक्ते द्रावितं वदराग्निना ॥ ५४ ॥ ऊर्ध्वाधो  
गोमयंदत्त्वा कदल्याः कोमलेदले ॥ स्निग्धे पत्रे ह्य  
योदव्या पर्पटाकारतानयेत् ॥ ५५ ॥ पादेलोहे  
विनिःक्षिप्ते लोहपर्पटिका भवेत् ॥ ताम्रे पादे विनिः  
क्षिप्ते ताम्रपर्पटिका भवेत् ॥ ५६ ॥ विषपादं च युं  
जीतत्त्वसाध्येष्वामयेषु च ॥ सुरसाया जयन्त्या  
श्वकन्यकादकरूपयोः ॥ ५७ ॥ त्रिफलायामुने

भङ्गिर्थांमुड्यात्रिकटुसंज्ञयोः ॥ भृंगराजस्यवहे  
 श्वप्रत्यहं द्रवभावितम् ॥ ५८ ॥ आर्द्रकस्यद्रवेणाथ  
 सप्तधाभावयेत्पुनः ॥ अंगारेस्वेदयेदीषत्पर्पटीरस  
 सुत्तमम् ॥ ५९ ॥ गुंजाष्टकंददीतास्यताम्बूली  
 पत्रसंयुतम् ॥ पिप्पलीरसकैश्चापिनिर्गुड्याह्वनु  
 पाययेत् ॥ ६० ॥ त्रिकंटकस्यमूलानिशुंठीछित्त्वा  
 विनिःक्षिपेत् ॥ अजाक्षीरेसनीराह्वयावत्क्षीरंवि  
 पाचयेत् ॥ ६१ ॥ तत्क्षीरंपाययेद्रात्रौसकणंभोज  
 येदपि ॥ कूष्मांडंवर्जयेच्चिंचावृंताकंकर्कटीमपि  
 ॥ ६२ ॥ आरनालंचतैलंचमैथुनंचविवर्जयेत् ॥  
 मासत्रयंतुसेवेतकासश्वासापनुत्तये ॥ ६३ ॥

भाषानुवादः—अथ पर्पटीरसके वनानेकी विधि वर्णन करते हैं—४ तोले  
 शुद्ध पाग और १२ तोले शुद्ध गन्धक लेकर इन दोनोंको खल करे, जब कजली  
 दोनोही ता ३० भगरेके सममें घोट, फिर बीसे चुपडेहुए लोहपात्रमें भगरेके  
 सममें पुगीहुटे कजलीका आल कर बेरीकी लकड़ीकी आच देके पिबलाये ॥ ५८ ॥  
 १५ लनमनाग पुगीपर गोबर बिछाकर उस गोबरपर उत्तम चिकना केलेका  
 त ॥ १५ लन उस केलेके पतेपर पिबली हुई कजलीको आल देने और उसके  
 ऊपर पुगी केलेका पत्ता रखकर उसमें पुनः गोबर आलकर ऐसे प्रकारसे  
 ३० केलेके पते पर उस पिबली हुई कजली परपटीके समान बन जावे ॥ ५९ ॥  
 इसे ३० दिनों के चोला भाग श्रेष्ठमसम मिलावनेमें, लोहपर्पटी, और ताघमसम  
 ३० केलेके पते परपटीके सदृशनी दे ॥ ६० ॥ पश्चात् इस पर्पटीमें तबतुथाश  
 ३० लन केलेके पते पर, मिलाकर, तुलसी, अरनी (अग्निमय) तातुमाग  
 ३० लन केलेके पते पर ३० ॥ त्रिकटु, अगन्नि, भारगी, गोमयमुग,  
 ३० लन केलेके पते पर इन प्रत्येकके रसकी तथा कायकी एकएक मा ॥



देवे ॥ ५८ ॥ फिर अदरकके रसकी ७ भावना देकर अगारपर कुछ स्वेदन करके रखे, यह असाध्य रोगोंपरभी उत्तम पर्पटी रसहै ॥ ५९ ॥ इस रसकी १ मासे भरकी मात्रा पानमें अथवा १० पिपलीके चूर्ण सग देवे और ऊपरसे निर्गुडीके रसको ॥ ६० ॥ अथवा गोखरूकी जड़ और सोंठको बकराके दूधमें डालकर उससे आधा पानी मिलाकर औटावे जब दूधमात्र शेष रह जावे तब छानकर ॥ ६१ ॥ पीपलीयुक्त इस दूधको रात्रिके समय पिलावे और उत्तम प्रकारका भोजन करावे तो वह पुरुष रोगरहित दिव्यदेह होय. इस रसको सेवन करनेवालेने कृष्णाट ( कोहला ) इमली वैगन, ककडी ॥ ६२ ॥ काजी, तेल और मैथुन ( स्त्रीसग व्यवाय ) इनको त्याग्न ( छोड़ ) ही देवे. इस पर्पटीरसका यदि ३ मास पर्यंत सेवन करे तो समस्त कास और श्वासभी दूर होय ॥ ६३ ॥ ऐसा प्रथातरमें लिखा है ।

अथ जयावटीनिर्माणविधिः ।

विपंत्रिकटुकंमुस्तंहरिद्रानिम्बपत्रकम् ॥ विडंग  
मष्टमंचूर्णछागमूत्रैस्समंसमम् ॥ चणकाभा  
वटीकार्यास्याज्यायोगवाहिका ॥ ६४ ॥  
रसेंद्र० सं० ज्वराधि० ॥

भाषानुवादः—अब जयावटीके बनानेकी विधि वर्णन करते हैं. शुद्ध विष ( सिंगया ) त्रिकटु ( सोंठ, मिरच, पीपल ) नागरमोथा, हल्दी, नींबूके पत्ते और वायविटग ये आठों समान लेकर इनका महीन चूर्ण बनावे फिर, उनको बरूरीके मूत्रमें खल करके चनेके बराबर वटी ( मोलिया ) बनावे इसे जयावटी कहते हैं, यह पृथक् २ अनुपानोंसे अनेक रोगोंको दूर करती है ॥ ६४ ॥ ऐसा रसेंद्रसारसग्रहमे ज्वराधिकारमे लिखा है ॥

अथ जयंतीवटीनिर्माणविधिः ।

विपंपाठाश्वगंधाचवचातालीशपत्रकम् ॥ मरीचं  
पिप्पलीनिम्बमजामूत्रेणतुल्यकम् ॥ वटिकापूर्वव

## त्कार्य्याजयन्तीयोगवाहिका ॥ ६५ ॥ रसे० संग्र० ज्व० अ० ॥

भाषानुवादः—अब जयतीवटीके बनानेकी विधि वर्णन करते हैं। शुद्ध गिप पात्र, असगव, वच्च, तालीशपत्र, कार्लीभिरच, छोटोपीपल, ओर निव इन आठों औषधोंको समान लेकर इनका कपडछान चूर्ण बनाने और उस चूर्णको बरुगोक्त मूत्रमें खल करके चनेके समान बटिया बनाने इसे जयतीवटी कहते हैं। नट्मो पृथक् अनुपानसे अनेक रोगोंको दूर करती है उक्त दोनों नटीमें समान ही योग्य और इन दोनोंके समानही अनुपान होनेसे उक्त दोनों वटी योग्यही ( सायगे रसेसायगे ) , इगोपिये इनको जगाजयन्ती वटी ऐसा एकसाथभी कहते हैं ॥ ६५ ॥ ऐसा रसेद्रसारसंग्रहमे ज्वराविकारमे लिखा है ॥

नित्तल हमने जो इत लट्ठमे तरंगमे गुग्गुलुचूर्ण, रस और नटी वर्णन की है उनके पृथक् अनुपान पूर्ण ( ४ थे तथा ५ थे तरंगमे ) ही देखेके हैं मिसे पाठ्य नक्षत्र नाम नि गारंगे

इति श्रीमणिऽज्जगामरामाग्निहो भाषानुवाद-

मिन्दोऽनुपानदर्पणे यागरागुग्गुलुनारा-

यममग्न पुत्र्यादिस्मनिर्माणविवेक-

हयने पत्र प्रमोद ॥ ९ ॥

जगानोधातवनातुस्मोत्तरस्त्रोपरस्त्रविषोपनि  
वागोभोवनमाग्नविवेकं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

१ तत्रादौ सन्ततः—स्वर्गोत्पद्यं च ताम्रं चरुं यशदमेव च ॥  
नीमं चैव च मत्तं तथा तत्रो गिरि संभवाः ॥ २ ॥

२ उच्यते ततः सतोपधातवः स्वर्गमाश्लिष्यं ताम्रमाश्लिष्यं  
तुर्वेदं च यशोनिश्च निन्दुश्च शिथिलजनः ॥ ३ ॥

- ३ रसः—रसायनार्थिभिलोकैः पारदोरस्यतेयतः ॥  
ततोरस इति प्रोक्तस्स च धातुरपि स्मृतः ॥ ४ ॥
- ४ उपरसाः—गन्धोहिङ्गुलमभ्रतालकशिलास्त्रोतोऽञ्ज  
नं टङ्कणम् ॥ राजावर्तकचुम्बकौस्फटिकयाशं  
खः खट्वांगैरिकम् ॥ कासीसरसकङ्कपर्दसिक  
ताचोलश्चकंकुष्ठकम् ॥ सौराष्ट्रीचमताअमीउ  
परसास्सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ ५ ॥
- ५ रत्नानि—वज्रंगारुत्सकंपुष्परागोमाणिष्यमेव च ॥  
इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि ॥  
मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै न व ॥ ६ ॥
- ६ उपरत्नानि—उपरत्नानिकाचश्च कर्पूराश्मातथैव च ॥  
मुक्ताशुक्तिस्तथा शङ्ख इत्यादीनि वहून्यपि ॥ ७ ॥
- ७ विषाः—विषंतु गरलः क्ष्वेडस्तस्य भेदानुदाहरे ॥  
वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥ ८ ॥  
सौराष्ट्रिकः शृङ्गकश्च कालकूटस्तथैव च ॥  
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी न व ॥ ९ ॥
- ८ उपविषाः—अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं तथैव करिहारिका ॥  
कर्वीरकोऽथ धन्तूरः पञ्चचोपविषाः स्मृताः ॥ १० ॥  
भा० प्र० पू० खं० १ भा० ॥

भाषानुवादः—अत्र इसके आगे धातु, उपधातु, रस, उपरस, रत्न, उपरत्न,  
विष और उपविषोंके शोषन और मारण । नष्टकरणे, का विवेक ( विचार )  
पूर्ण क्रमेण ॥ १ ॥

१ सातधातु—१ सोना २ चादी ३ तांबा ४ राग ( कथील ) ५ जस्ता ६ मीमा और ७ लोहा ये पहाड़ोंसे उत्पन्न होनेवाले सात धातु हैं ॥ २ ॥

२ उपधातु—१ सोनामक्खी २ रूपामक्खी ३ नीलाथोथा ४ कासा ५ पीतल ६ सिंदूर और ७ शिलार्जात ये सात उपधातु हैं ॥ ३ ॥

३ रत्न—जरा रोगरहित और बल बुद्धि वृद्धिसहित रहनेकी इच्छावाले मनुष्योंकरके पारा भक्षण किया जाता है इस कारण अथवा सुवर्णादि सर्व-धातुओंको भक्षण करजानेवाला है इस लिये पारेको रत्न तथा धातुभी कहते हैं ॥ ४ ॥

४ उपरत्न—गन्धक, तिग्गुड, अभ्रक, हरताल, मनाशिल, कालामुरमा, सुहागा, गन्धार्पक (खेटी) चुराकपाण, फिटकरी, शल, खाटिया, गेरू, हीरा कमी, तारिया, कौडी, वाद्र ( मिक्ता ) बोल मुरदारसग, और मुलतानी ये उपरत्न हैं ये पारेके किञ्चित् गुणयुक्त मानेगये हैं ॥ ५ ॥

५ रत्न—होरा, पन्ना, माणिक, पुखराज, नीलमणी ( नीलम ) गोमद ( प. परन ) नेदूर्य श्याम मणी , मोती और भूषा ये नवरत्न कहाते हैं ॥ ६ ॥

६ उपरत्न—कान्त, पिंजिर, मोती ही मीप और शल इत्यादि उपरत्न कहाते हैं ॥ ७ ॥